भगवतीचरण वर्मा

चित्रलेखा

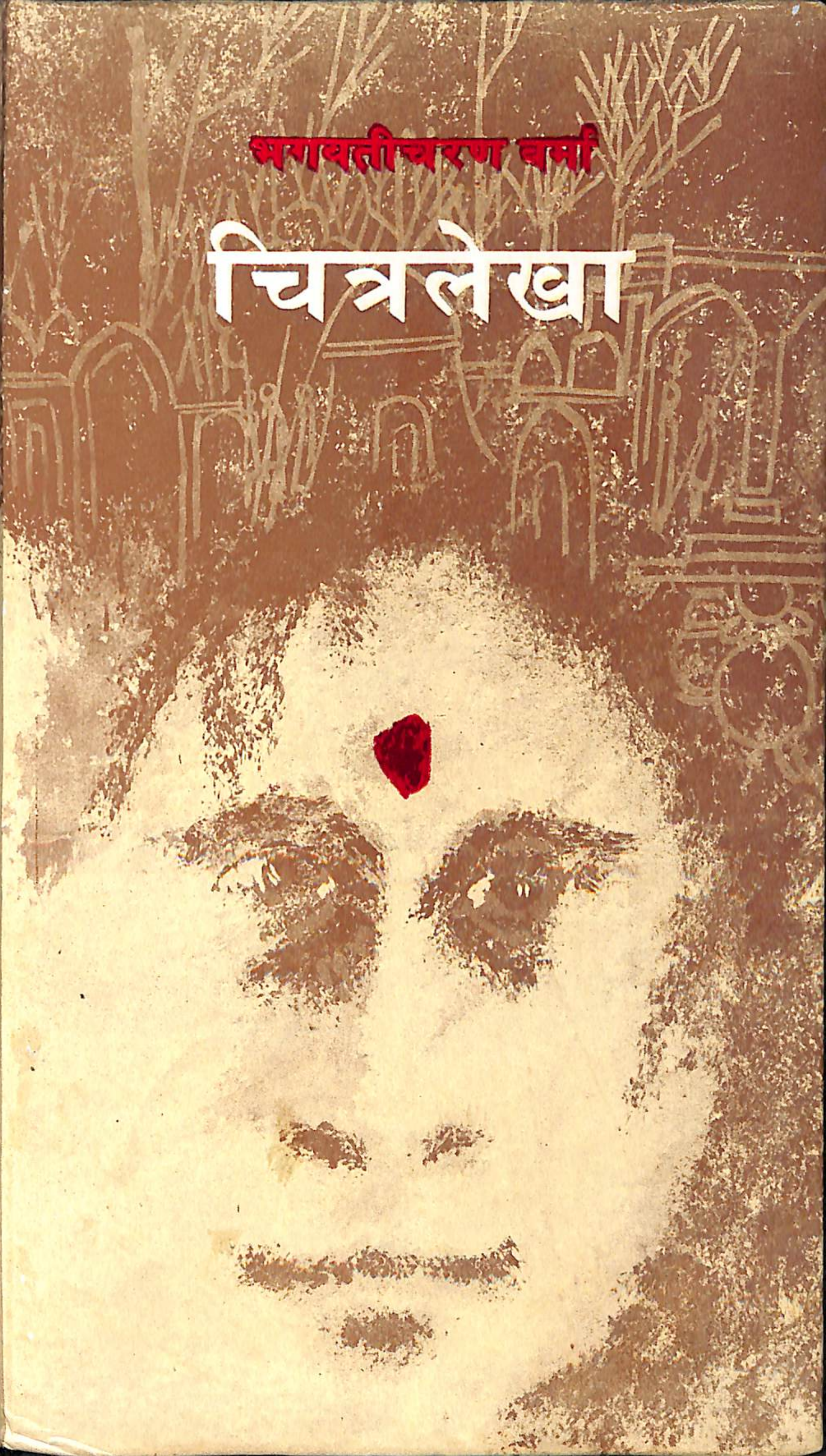

चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा

चित्रलेखा

भगवतीचरण वर्मा

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 100.00

© विजयप्रताप सिंह वर्मा

राजकमल से पहली बार : जनवरी 1993
पुनर्मुद्रित : 1993, 1994, 1996

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002

मुद्रक : हर्षा प्रोसेस
मानसरोवर पार्क, दिल्ली-110 032

आवरण : चंचल

CHITRALEKHA
Novel by Bhagwaticharan Verma

ISBN: 81-7178-558-1

चित्रलेखा

उपक्रमणिका

श्वेतांक ने पूछा—"और पाप!"

महाप्रभु रत्नांबर मानो एक गहरी निद्रा से चौंक उठे। उन्होंने श्वेतांक की ओर एक बार बड़े ध्यान से देखा—"पाप? बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स! पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक! तुम पूछते हो पाप क्या है!" इसके बाद रत्नांबर ने कुछ देर तक कोलाहल से भरे पाटलिपुत्र की ओर, जिसके गगनचुंबन करने का दम भरनेवाले ऊंचे-ऊंचे प्रासाद अरुणिमा के धुंधले प्रकाश में अब भी दिखलाई दे रहे थे, देखा—"हां, पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूं। पाप क्या है, और उसका निवास कहां है; यह एक बड़ी कठिन समस्या है, जिसको आज तक नहीं सुलझा सका हूं। अविकल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतराने के बाद भी जिस समस्या को नहीं हल कर सका हूं, उसे किस प्रकार तुमको समझा दूं?"

रत्नांबर ने रुककर फिर कहा—"पर श्वेतांक, यदि तुम पाप को जानना ही चाहते हो, तो तुम्हें संसार में ढूंढ़ना पड़ेगा। इसके लिए यदि तैयार हो, तो संभव है, पाप का पता लगा सको।"

श्वेतांक ने रत्नांबर के सामने मस्तक नमाकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूं।"

"और कदाचित् तुम भी पाप को ढूंढ़ना चाहोगे?" — रत्नांबर ने विशालदेव की ओर देखा।

विशालदेव ने भी रत्नांबर के सामने मस्तक नमाते हुए कहा—"महाप्रभु का अनुमान उचित है!"

रत्नांबर का मुख प्रसन्नता से चमक उठा—"इसके पहले कि मैं तुम लोगों को संसार में भटककर अनुभव प्राप्त करने को छोड़ दूं, तुम्हें परिस्थितियों से भिज्ञ करा देना आवश्यक होगा। इस नगर के दो महानुभावों से मैं यथेष्ट परिचित हूं, और इस कार्य को पूरा करने के लिए तुम लोगों को इन दोनों की सहायता की आवश्यकता होगी। एक योगी है और दूसरा भोगी—योगी का नाम है कुमारगिरि, और भोगी का नाम है

बीजगुप्त। तुम दोनों के जीवन को इनके जीवन-स्रोत के साथ-साथ ही बहना पड़ेगा।"

दोनों शिष्यों ने एक साथ उत्तर दिया—"स्वीकार है!"

"विशालदेव! तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारी ध्यान तथा आराधना पर अनुरक्ति है; इसलिए तुम्हें कुमारगिरि का शिष्य बनना उचित होगा। और श्वेतांक! तुम क्षत्रिय हो, तुम्हें संसार में अनुरक्ति है, इसलिए तुम्हें बीजगुप्त का सेवक होना पड़ेगा।"

दोनों शिष्यों ने एक साथ उत्तर दिया—"स्वीकार है!"

"तुम दोनों के मार्ग निर्धारित हो चुके। अब रहा मैं। तुम लोग मेरी चिंता न करो। जीवन में अनुभव की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी उपासना की। तुम अनुभव प्राप्त करो और मैं तपस्या करूंगा। आज से एक वर्ष बाद तुम दोनों मुझसे यहीं पर मिलोगे। और उस समय फिर से हम अपने निर्धारित कार्यक्रम पर चल सकेंगे।

"पर एक बात याद रखना। जो बात अध्ययन से नहीं जानी जा सकती है, उसको अनुभव से जानने का प्रयत्न करने के लिए ही मैं तुम दोनों को संसार में भेज रहा हूं। पर इस अनुभव में तुम स्वयं ही न बह जाओ, इसका ध्यान रखना पड़ेगा। संसार की लहरों की वास्तविक गति में तुम दोनों बहोगे। उस समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं डूब न जाओ।"

श्वेतांक ने विशालदेव की ओर देखा और विशालदेव ने श्वेतांक की ओर।

रत्नांबर ने कुछ देर तक मौन रहकर फिर कहना आरंभ किया—"जिन परिस्थितियों में तुम जा रहे हो, उनका पहले से ही परिचय करा दूं। कुमारगिरि योगी है, उसका दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है। संसार से उसको विरक्ति है, और अपने मतानुसार उसने सुख को भी जान लिया है; उसमें तेज है और प्रताप है; उसमें शारीरिक बल है और आत्मिक बल है। जैसा कि लोगों का कहना है, उसने ममत्व को वशीभूत कर लिया है। कुमारगिरि युवा है; पर यौवन और विराग ने मिलकर उसमें एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न कर दी है। संसार उसका साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य। विशालदेव! वही कुमारगिरि तुम्हारा गुरु होगा।

"और श्वेतांक! बीजगुप्त भोगी है; उसके हृदय में यौवन की उमंग है और आंखों में मादकता की लाली। उसकी विशाल अट्टालिकाओं में भोग-विलास नाचा करते हैं; रत्नजटित मदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सारा सुख है। वैभव और उल्लास की तरंगों में वह केलि करता है, ऐश्वर्य की उसके पास कमी नहीं है। उसमें सौंदर्य है, और उसके हृदय में

संसार की समस्त वासनाओं का निवास। उसके द्वार पर मातंग झूमा करते हैं; उसके भवन में सौंदर्य के मद से मतवाली नर्तकियों का नृत्य हुआ करता है। ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं, शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं है। और स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिंता नहीं। आमोद और प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है तथा लक्ष्य भी है। उसी बीजगुप्त का तुम्हें सेवक बनना पड़ेगा। श्वेतांक! स्वीकार है?''

''महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है।''—श्वेतांक एक बार कल्पना से परे ऐश्वर्य की थाह लेना चाहता था।

''और विशालदेव, तुम्हें स्वीकार है?''

''महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है।''—विशालदेव एक बार यौवन और विराग के मिश्रण से उत्पन्न शक्ति का महत्व जानना चाहता था।

''तो फिर ऐसा ही हो।''—इतना कहकर रत्नांबर उठ खड़े हुए।

दूसरे दिन कुटी खाली पड़ी थी। गुरु साधना के शुष्क क्षेत्र में और शिष्य अथाह संसार में निकल पड़े थे।

पहला परिच्छेद

छलकते हुए मदिरा के पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए बीजगुप्त ने कहा—"चित्रलेखा! जानती हो जीवन का सुख क्या है?"

चित्रलेखा की अधखुली आंखों में मतवालापन था और उसके अरुण कपोलों में उल्लास था। यौवन की उमंग में सौंदर्य किलोलें कर रहा था, आलिंगन के पाश में वासना हंस रही थी। चित्रलेखा ने मदिरा का एक घूंट पिया—इसके बाद वह मुस्कराई। एक क्षण के लिए उसके अधरों ने बीजगुप्त के अधरों से मौन भाषा में कुछ बात कही, फिर धीरे से उसने उत्तर दिया—"मस्ती!"

उस समय प्रायः आधी रात बीत चुकी थी। बीजगुप्त का भवन सहस्रों दीप-शिखाओं से आलोकित हो रहा था, द्वार पर शहनाई में विहाग बज रहा था। केलि-भवन में नगर की सर्वसुंदरी नर्तकी के साथ सामंत बीजगुप्त यौवन की उमंग में निमग्न था और बाहर गहरे अंधकार में सारा विश्व।

बीजगुप्त हंस पड़ा—"सोच रहा हूं चित्रलेखा, यौवन का अंत क्या होगा?"

चित्रलेखा भी हंस पड़ी, पर हंसी क्षणिक थी; अचानक वह मीठी और उल्लास से भरी हंसी वेदना-मिश्रित गंभीरता में परिणत हो गई। उसने भी शायद कभी इसी प्रश्न का उत्तर पाने की चेष्टा की थी, पर प्रश्न इतना भयानक था कि वह उस पर अधिक देर तक सोच न सकी थी। उसका सिर घूमने लगा था और इसके बाद मदिरा के पात्र में उस समय के लिए उसने उस दुखद विचार को डुबो दिया था। आज एकाएक फिर उसी प्रश्न को सुनकर वह चौंक उठी—"जीवित मृत्यु!"

"जीवित मृत्यु! नहीं, यह असंभव है। यौवन का अंत है एक अज्ञात अंधकार, और उस अज्ञात अंधकार के गर्त में क्या छिपा है, वह न तो मैं जानता हूं, और न उसके जानने की कोई इच्छा ही है। भूत और भविष्य, ये दोनों ही कल्पना की चीजें हैं, जिनसे हमको कोई प्रयोजन नहीं, वर्तमान

हमारे सामने है, और वह····" – बीजगुप्त रुक गया, शायद वह आगे के शब्दों को ढूंढ़ने लगा था।

"और वह उल्लास-विलास है, संसार का सारा सुख है, यौवन का सार है।"–चित्रलेखा ने हंसते हुए वाक्य पूरा कर दिया।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगन-पाश में लेकर कहा–"तुम मेरी मादकता हो।"

चित्रलेखा ने उत्तर दिया–"और तुम मेरे उन्माद हो।"

चित्रलेखा वेश्या न थी, वह केवल नर्तकी थी। पाटलिपुत्र की असाधारण सुंदर नर्तकी का वेश्यावृत्ति स्वीकार न करना, यह बात स्वयं ही असाधारण थी; पर उसके कारण थे, और उन कारणों का उसके गत जीवन से गहरा संबंध था।

चित्रलेखा ब्राह्मण विधवा थी। वह विधवा उस समय हुई थी, जिस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी। विधवा हो जाने के बाद संयम उसका नियम हो गया था, पर बात वैसी ही अधिक दिनों तक न रह सकी। एक दिन उसके जीवन में कृष्णादित्य ने प्रवेश किया। कृष्णादित्य क्षत्रिय और शूद्रा का वर्णशंकर पुत्र था। कृष्णादित्य एक सुंदर नवयुवक था, और उसकी सुंदरता में एक विशेष प्रकार का आकर्षण था। कृष्णादित्य ने विधवा चित्रलेखा की तपस्या भंग कर दी।

सुंदरी चित्रलेखा का दबा हुआ यौवन विकसित हो गया, विराग का तेज उल्लास की चमक से दब गया। चित्रलेखा के जीवन का स्रोत बदल गया। कृष्णादित्य ने चित्रलेखा से शपथ ली–"जब तक हम दोनों जीवित रहेंगे, हम दोनों साथ रहेंगे, कोई भी हम दोनों को अलग न कर सकेगा।" चित्रलेखा ने कृष्णादित्य की शपथ पर विश्वास कर लिया था। इसके बाद जो होना चाहिए था, वही हुआ।

चित्रलेखा गर्भवती हो गई। गुप्त प्रेम संसार पर प्रकट हो गया। कृष्णादित्य के पिता ने कृष्णादित्य को निकाल दिया और चित्रलेखा के पिता ने चित्रलेखा को। संपन्न पिता का पुत्र कृष्णादित्य गर्भवती सुंदरी चित्रलेखा को लेकर भिखारी की भांति जनरव में निकल पड़ा। त्याज्य नवयुवक को समाज की भर्त्सना और अपमान असह्य हो गए; इस अपमानजनक जीवन की अपेक्षा मृत्यु उसे अधिक प्रिय लगी। रह गई चित्रलेखा, उसे एक नर्तकी

ने अपने यहां आश्रय दिया।

चित्रलेखा को एक पुत्र हुआ; पर उत्पन्न होने के साथ ही वह संसार को छोड़ गया। चित्रलेखा का कंठ कोमल था और शरीर सुंदर। जिस नर्तकी ने उसे आश्रय दिया था, उसने उसे नृत्य तथा संगीत-कला की शिक्षा दी। इसके बाद चित्रलेखा भी नर्तकी हो गई। रहा भोग-विलास, चित्रलेखा ने एक बार फिर वैधव्य के संयम को पालने का प्रयत्न किया। कृष्णादित्य और कृष्णादित्य का पुत्र दोनों ही चित्रलेखा के जीवन में आकर निकल गए; पर दोनों ही अपनी-अपनी स्मृति उसके हृदय-पटल पर छोड़ गए।

पाटलिपुत्र का जनसमुदाय चित्रलेखा के पैरों पर लोटा करता था; पर चित्रलेखा ने संयम के तेज से जनित कांति को बनाए रखा। बड़े-बड़े शक्तिशाली सरदार और लक्षाधीश नवयुवक उसके प्रणय के प्यासे थे; पर उसको कोई भी न पा सका। जनसमुदाय के सामने वह असाधारण सुंदरी आती थी और विद्युत की भांति चमककर वह उनके सामने से लोप हो जाती थी। जिसने उसे एक बार देखा, उसके हृदय में उसे एक बार फिर देखने की अमिट साध उत्पन्न हो गई।

एक दिन बीजगुप्त चित्रलेखा का नृत्य देखने गया। नाचते-नाचते चित्रलेखा की दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी—एकाएक उसका मुख श्वेत हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कृष्णादित्य स्वर्ग से उतरकर उसका नृत्य देखने आया है। वह रुक गई और एकटक अपने को तथा अपने सामने बैठे हुए जनसमुदाय को भूलकर बीजगुप्त की ओर देखने लगी। बीजगुप्त युवा था, उसकी अवस्था प्रायः पच्चीस वर्ष की थी। चित्रलेखा के सौंदर्य के वशीभूत होकर वह भी एकटक उसकी ओर देख रहा था। उसकी आंखें चित्रलेखा की आंखों से मिल गईं। जनसमुदाय की आंखें उस व्यक्ति की ओर घूम गईं, जिसको चित्रलेखा देख रही थी। लोगों के मुख से निकल पड़ा—"अरे यह तो बीजगुप्त है।"

चित्रलेखा ने भी यह सुना, अपनी भूल पर उसे परिताप हुआ; पर उससे अधिक क्रोध। बीजगुप्त की ओर से आंखें फेरकर वह नृत्य करने लगी। नृत्य समाप्त होने के बाद बीजगुप्त चित्रलेखा के सामने गया, उसने कहा—"क्या कभी आपके स्थान पर आपके दर्शन कर सकने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगा!"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त की ओर देखा, वह हंस पड़ी—"नहीं, मैं व्यक्ति से नहीं मिलती। मैं केवल समुदाय के सामने आती हूं, व्यक्ति का मेरे जीवन से कोई संबंध नहीं।"

बीजगुप्त की आशा पर तुषार-पात हुआ, उसका प्रफुल्ल मुख मुरझा गया। फिर भी उसने साहस किया—"व्यक्ति से ही समुदाय बनता है,

समुदाय की प्यास उसके प्रत्येक व्यक्ति की प्यास है, फिर यह भेद क्यों ?"

"भेद जानना चाहोगे तो सुनो। जिसे सब समुदाय का उल्लास कहते हैं, वह समुदाय के व्यक्तियों के रुदन का संग्रह है। निर्बल व्यक्तियों की आहें संगठित होकर समुदाय द्वारा जनित क्रांति का रूप धारण कर सकती हैं। और साथ ही जहां समुदाय से हानि की कोई संभावना नहीं होती, वहां व्यक्ति का ममत्व-भाव भयोत्पादक केंद्र बन जाता है।"

बीजगुप्त प्रेम करने गया था, दर्शन पर तर्क करने के लिए नहीं। उसने कहा—"तो फिर यह समझ लूं कि मेरे लिए आपका द्वार बंद है ?"

बीजगुप्त के मुख पर निराशा की हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गई—"व्यक्तित्व जीवन में प्रधान है और व्यक्ति से ही समुदाय बनता है। जब व्यक्ति वर्जित है, तो उस व्यक्ति को समुदाय का भाग बनना अपना ही अपमान करना है।"—इतना कहकर तीर की भांति वह वहां से चला गया।

बीजगुप्त चला गया; पर चित्रलेखा के हृदय में वह एक प्रकार की हलचल पैदा कर गया।

दिन-पर-दिन बीतते गये; पर चित्रलेखा ने बीजगुप्त को फिर न देखा। कृत्रिम उपेक्षा धीरे-धीरे दूर होती गई और चित्रलेखा के हृदय में बीजगुप्त की स्मृति प्रबल हो उठी। नित्य ही नृत्य-भवन में बैठे हुए दर्शकों में उसकी आंखें बीजगुप्त को ढूंढ़ती थीं; पर अंत में उन्हें निराश होना पड़ता था।

लाख दबाने की चेष्टा करने पर भी अभिलाषा प्रबल ही होती गई। एक दिन चित्रलेखा ने अपनी दासी से पूछा—"इस नगर में बीजगुप्त नाम का कोई व्यक्ति रहता है ?"

दासी ने उत्तर दिया—"बीजगुप्त को कौन नहीं जानता ? वह इस नगर का सबसे सुंदर तथा प्रभावशाली युवक-सामंत है।"

चित्रलेखा ने दासी को एक पत्र दिया और उसे बीजगुप्त को दे देने को कहा।

दासी ने बीजगुप्त को वह पत्र दे दिया। उसमें लिखा था—"चित्रलेखा बहुत सोच-विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि केवल एक व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है। और वह व्यक्ति बीजगुप्त है।"—पत्र पढ़ते ही बीजगुप्त के सारे शरीर में सुख का एक हल्का-सा कंपन दौड़ गया। उसी दिन से इन दो प्राणियों का साथ हुआ था; पर फिर भी चित्रलेखा वेश्या न थी।

बीजगुप्त ने हंसकर कहा—"मादकता और उन्माद—इन दोनों का सदा साथ रहा है और रहेगा। चित्रलेखा, हम दोनों कितने सुखी हैं!"—उस समय चित्रलेखा भी हंस रही थी।

इसी समय शहनाई का बजना बंद हो गया, प्रहरी ने उच्च स्वर में कहा—"श्रीमान्! द्वार पर अतिथि हैं, क्या आज्ञा है?"

बीजगुप्त ने आलिंगन-पाश ढीला कर दिया, चित्रलेखा उससे कुछ दूर हटकर बैठ गई। बीजगुप्त ने परिचारिका से कहा—"अतिथियों को यहीं आने दो।"—इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र खाली कर दिया।

अर्धरात्रि के समय कौन-से अतिथि आ सकते हैं, बीजगुप्त इस विषय पर सोच रहा था; उसी समय श्वेतांक के साथ रत्नांबर ने बीजगुप्त के केलि-गृह में प्रवेश किया। रत्नांबर को देखकर बीजगुप्त ने उठकर अभिवादन किया और चित्रलेखा ने अपना मस्तक नीचा कर लिया।

केलि-गृह को एक बार अच्छी तरह से देखने के बाद रत्नांबर की आंखें चित्रलेखा पर रुक गईं। थोड़ी देर तक रुककर रत्नांबर ने कहा—"नगर की सर्वसुंदरी और पवित्र नर्तकी अर्धरात्रि के समय बीजगुप्त के केलि-गृह में! आश्चर्य होता है।"—इतना कहकर रत्नांबर आसन पर बैठ गए। श्वेतांक खड़ा ही रहा।

बीजगुप्त ने रत्नांबर से पूछा—"महाप्रभु ने किस कारण दास पर कृपा करने का इस समय कष्ट उठाया?"

रत्नांबर हंस पड़े—"बीजगुप्त! तुमसे सब बातें स्पष्ट रूप से कहूंगा। आज मेरे इस शिष्य ने मुझसे प्रश्न किया कि पाप क्या है? मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूं। तुम मेरी सहायता कर सकते हो। तुम मेरे शिष्य रहे हो, मैंने कभी तुमसे कोई गुरु-दक्षिणा नहीं ली। पाप का पता लगाने के लिए ब्रह्मचारी की कुटी उपयुक्त स्थान नहीं है; संसार के भोग-विलास में ही पाप का पता लग सकेगा। तुम्हारा भवन और तुम्हारा समाज—इन चीजों से श्वेतांक को भिज्ञ कराना आवश्यक है; इसलिए मैं इसको तुम्हारे सामने सेवक-रूप में उपस्थित कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि तुम इसे सेवक-रूप में स्वीकार करो; पर एक बात और याद रखना—यह तुम्हारा गुरु-भाई भी हो सकता है।"

"महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है।"—बीजगुप्त ने अपना मस्तक नमा दिया।

"अच्छा! मैं जाता हूं—मेरा एक काम पूरा हो गया। और श्वेतांक, यह याद रखना कि बीजगुप्त तुम्हारे प्रभु हैं और तुम इनके सेवक। इस वैभव को भोगो और फिर पाप का पता लगाने का प्रयत्न करो। अच्छा और बुरा—यह तुम्हारे सामने आयेगा; पर इस कसौटी पर ध्यान रखना कि

अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो। और बीजगुप्त! तुमसे केवल यही कहना है कि श्वेतांक के दोषों को क्षमा करना—यह अभी अबोध है, संसार में यह अभी पदार्पण ही कर रहा है।"—इतना कहकर रत्नांबर केलि-भवन से चले गए।

रत्नांबर के जाने के बाद बीजगुप्त ने श्वेतांक को बड़े गौर से देखा—"तुम्हारा नाम श्वेतांक है और तुम आज से मेरे सेवक हुए।"—इतना कहने के बाद बीजगुप्त के मुख पर हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गई। चित्रलेखा की ओर संकेत करके बीजगुप्त ने कहा—"जानते हो श्वेतांक, यह कौन है?"

श्वेतांक की आंखें रात्रि के समय प्रकाश से जगमगाते हुए सुसज्जित केलि-भवन में चित्रलेखा के मादक सौंदर्य को देखकर चकाचौंध हो गईं। उसने कहा—"नहीं।"

"अच्छा तो सुनो! इनका नाम चित्रलेखा है, और यह पाटलिपुत्र की सर्वसुंदरी नर्तकी होते हुए भी मेरी पत्नी के बराबर हैं। इसीलिए यह तुम्हारी स्वामिनी भी हुईं।"—इतना कहकर बीजगुप्त हंस पड़ा। "तुम आश्चर्य में आ गए होगे; पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। यहां रहकर तुम परिस्थितियों को अपना सकोगे। अच्छा, यह मदिरा का पात्र अपनी स्वामिनी को दो।"—इतना कहकर बीजगुप्त ने सुगंधित मदिरा से भरा हुआ स्वर्ण-पात्र श्वेतांक के हाथ में दे दिया।

श्वेतांक ने मदिरा का पात्र चित्रलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदिरा का पात्र लेते हुए श्वेतांक का हाथ चित्रलेखा के हाथ से स्पर्श कर गया। इस स्पर्श से श्वेतांक का सारा गात कांप-सा गया। चित्रलेखा ने श्वेतांक की ओर देखा—"नवयुवक, तुम्हें इस अनोखे संसार में प्रथम बार आने के उपलक्ष्य में बधाई है!"—इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र खाली कर दिया।

उसी समय प्रहरी ने उच्च स्वर में कहा—"शयन का समय हो गया।"

बीजगुप्त ने चित्रलेखा से पूछा—"यहां रहोगी, या अपने भवन को जाओगी?"

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई। द्वार की ओर बढ़ते हुए उसने कहा—"अपने भवन को ही इस समय जाना उचित होगा; पर शायद अकेली न जा सकूंगी।"—उस समय उसके पैर लड़खड़ा रहे थे।

परिचारिका ने केलि-गृह में प्रवेश किया। बीजगुप्त भी उठ खड़ा हुआ—"हां, इस समय अकेले जाना वास्तव में असंभव होगा।"

कुछ देर तक सोचकर बीजगुप्त ने श्वेतांक से कहा—"द्वार पर रथ खड़ा है। उसमें बिठाकर तुम अपनी स्वामिनी को उनके भवन तक पहुंचा दो।

उस समय तक तुम्हारे शयन-गृह का प्रबंध हो जाएगा।"

श्वेतांक चित्रलेखा के साथ चला गया। बीजगुप्त ने परिचारिका को श्वेतांक के शयन-गृह का प्रबंध कर देने की आज्ञा देकर निद्रा देवी की शरण ली।

दूसरा परिच्छेद

कुमारगिरि योगी था!

योगी? हां, क्योंकि उसने संसार छोड़ दिया था। क्यों? एक दूसरा कल्पना का संसार प्राप्त करने के लिए, इस आशा पर कि वह संसार सुख से पूर्ण होगा। जनरव से उसे अरुचि थी—कल्पना का मण्डल उसके विचरने का क्षेत्र था। संसार में उसे शांति न थी, इसीलिए शांति को पाने के लिए उसे निर्जन की शरण लेनी पड़ी थी। संयम और नियम—इन पर उसे विश्वास था, इच्छाएं उसके वशीभूत थीं।

योगी कुमारगिरि में शक्तियां भी थीं; पर वह उन शक्तियों का संचय करने में ही विश्वास करता था, प्रयोग करने में नहीं। एकांत में उसका मन स्थिर रहता था, और एकाग्रचित्त होकर वह अभ्यास भी कर सकता था। उसने अपना शरीर तपा दिया था; पर उसको कष्ट न हुआ था। शरीर तपा था; पर उसकी जलन को एक अलौकिक सुख की कल्पना शीतल कर देती थी। उसने वासनाओं को दबा दिया था, क्योंकि वासनाओं के कारण ही मनुष्य पाप करता है।

योगी कुमारगिरि सुखी था। विचार-सागर में वह डूबा रहता था। उसके सामने इच्छाओं का संसार न था और इच्छाओं के न पूर्ण होने से जनित परिताप न था। उसके जीवन की अकर्मण्यता पर ज्ञान और विचार का आवरण था। सुख कल्पना है—तृप्ति है। प्यास न होने के कारण तृप्ति का कोई वास्तविक महत्व न भी हो; पर ऐसी स्थिति में हृदय पर कोई भार नहीं रहता, कसक की, टीस की अनभिज्ञता प्रधान होती है। दुःख से शून्य तथा हलके-से हृदय को कल्पना के संसार में ले जाना सरल होता है। योगी कुमारगिरि विस्मृति के अंक में निवास करता था। आत्म-विस्मृति और कल्पना की सजीवता का भ्रम—इन दोनों में अजब मस्ती है। एक काल्पनिक चाह थी, एक काल्पनिक तृप्ति भी वहीं पर थी, दो कल्पनाओं से उत्पन्न सुख में वह मग्न था।

और इसीलिए कुमारगिरि योगी था!

मधुपाल कुमारगिरि का शिष्य था। मधुपाल कुमारगिरि की शक्तियों से परिचित था, और साथ-साथ चकित भी।

मधुपाल ने पूछा—"देव, संयम का लक्ष्य क्या है?"

कुमारगिरि सम्हलकर बैठ गए—"शांति! और शांतिजनित आनंद!"

"बाह्य दृष्टि से परिवर्तन और आंतरिक दृष्टि से शून्य। शून्य और परिवर्तन—इनके विचित्र संयोग पर तुम्हें शायद आश्चर्य होगा—ये दोनों एक किस प्रकार से हो सकते हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक होगा। पर वही स्थिति, जहां मनुष्य परिवर्तन और शून्य के भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, ज्ञान की अंतिम सीढ़ी है। संसार क्या है? शून्य है। और परिवर्तन उस शून्य की चाल है। परिवर्तन कल्पना है, और कल्पना ही स्वयं शून्य है। समझे?"

मधुपाल इस उत्तर से संतुष्ट न हो सका—"देव, आपने कहा कि संसार शून्य है। यह मेरी समझ में नहीं आया। जो वस्तु दृष्टि के सामने है वह शून्य किस प्रकार हो सकती है?"

कुमारगिरि हंस पड़े—"यहीं तो योग की आवश्यकता होती है। योगी जिस समय आंखें बंद करता है उस समय एक अखंड शून्य रहता है, और कुछ नहीं। उसी शून्य में सुख-दुख, अनुराग-विराग, दिन-रात, ब्रह्म और माया सब-के-सब लोप हो जाते हैं। उसी प्रकाशवान शून्य में वह विचरता है और वहीं वह निमग्न हो जाता है। जहां से उसकी उत्पत्ति हुई है, वहीं वह इस काल्पनिक जीवन के कुछ क्षणों के लिए मिल जाता है। और उसी ब्रह्म से युक्त शून्य में सदा के लिए मिल जाने को मुक्ति कहते हैं। इस तरह योगी इसी शरीर के साथ मुक्ति का अनुभव करता है।"

अपने गुरु के प्रति मधुपाल की श्रद्धा उमड़ पड़ी। गद्गद होकर उसने गुरु के चरणों में अपना मस्तक नमा दिया। उसे अपने गुरु के अखंड ज्ञान पर गर्व था, और गुरु के अच्युत होने पर विश्वास। इसी समय रत्नांबर ने विशालदेव के साथ कुमारगिरि की कुटी में प्रवेश किया।

रत्नांबर को सम्मुख देखकर कुमारगिरि आसन से उठ खड़े हुए। दोनों एक-दूसरे से गले मिले। इसके बाद रत्नांबर को आसन देकर कुमारगिरि ने पूछा—"आचार्य ने किसलिए यह कष्ट उठाया?"

निश्चल भाव से रत्नांबर ने उत्तर दिया—"अखंड तेज से विभूषित योगी कुमारगिरि से अपने शिष्य को दीक्षित कराने के लिए ही मैं उपस्थित हुआ हूं।"

कुमारगिरि ने कहा—"आचार्य, इस तुच्छ सेवक को एक बहुत बड़ा स्थान दे रहे हैं और मैं उसके लिए सर्वथा अयोग्य हूं।"

"नहीं, योगी कुमारगिरि, यह तुम्हारी उदारता है। तुम वास्तव में श्रेष्ठ हो। तुम संसार से बहुत ऊंचे उठ चुके हो और मैं अभी तक संसार में ही हूं। जहां केवल तर्क किसी समस्या को सुलझाने में पर्याप्त नहीं होता, वहां अनुभव की तथा कल्पना की आवश्यकता होती है। तुममें ज्ञान है, और कल्पना है, मुझमें केवल अनुभव है। इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं। तुम्हारे साथ रहकर मनुष्य जीवन की जटिल-से-जटिल समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करने में समर्थ हो सकेगा। इसीलिए मैं विशालदेव को तुम्हारा शिष्य बनाना चाहता हूं। योगी कुमारगिरि, तुम मेरा अनुरोध न टालोगे, और मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करोगे।"

कुमारगिरि ने विशालदेव की ओर देखा–"वत्स! जीवन की किस समस्या को सुलझाने के लिए तुम्हें मेरे पास आना पड़ रहा है?"

विशालदेव ने कुमारगिरि को अभिवादन करके शांत भाव से उत्तर दिया–"देव! मैं जानना चाहता हूं कि पाप क्या है?"

कुमारगिरि हंस पड़े। उनकी हंसी में माधुर्य था। उन्होंने कहा–"तुम जानना चाहते हो कि पाप क्या है! पर पाप क्या है, यह अधिकतर अनुभव से ही जाना जा सकता है, और मेरे साथ रहकर तुम्हें पाप का अनुभव न हो सकेगा। मेरा क्षेत्र है संयम और नियम–और संयम और नियम से पाप दूर रहता है। फिर भी आचार्य का अनुरोध है कि मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाऊं। शिष्य बनाने के पहले तुम और आचार्य पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखला दूंगा, और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे?"

कुमारगिरि की बातें सुनकर रत्नांबर मन-ही-मन मुस्कराए। उन्होंने कहा–"योगी कुमारगिरि! जो तुमने कहा वह उचित कहा। किसी भी समझदार व्यक्ति को इसमें आपत्ति न होगी।"

"तो फिर आचार्य का अनुरोध स्वीकार है।"

रत्नांबर उठ खड़े हुए–"अच्छा योगी कुमारगिरि, तो अब मैं तुम्हारी आज्ञा चाहता हूं। तुम्हें शायद आश्चर्य होगा; पर मैं स्वयं ही नहीं जानता हूं कि पाप क्या है। वर्षों के अध्ययन और अनुभव के बाद भी पूर्णज्ञान की थाह नहीं ले सका हूं। अपने शिष्यों को मैंने योग्य व्यक्तियों के हाथ सौंप दिया है, अब मैं कुछ थोड़ी-सी तपस्या भी करूंगा। देखूंगा कि जिस बात को मैं अध्ययन तथा अनुभव से नहीं जान सका, क्या मैं उसे आराधना और साधना से जान सकता हूं।"

इतना कहकर रत्नांबर वहां से चले गए।

रत्नांबर के चले जाने के बाद कुमारगिरि ने संकेत से विशालदेव को बिठलाया।

''वत्स! तुम मेरे शिष्य हुए। इस समय मैं तुमसे कुछ प्रश्नों का उत्तर चाहूंगा। जानते हो वासना क्या है?''

विशालदेव ने उत्तर दिया—''देव! वासना इच्छाओं का दूसरा नाम है।''

''ठीक! पर यह भी जानते हो कि मनुष्य के जीवन में वासना का क्या स्थान है?''—कुमारगिरि ने पूछा—''शायद नहीं! और वह तुम्हें मैं आज बताऊंगा। वासना पाप है, जीवन को कलुषित बनाने का एकमात्र साधन है। वासनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करता है, और उनमें डूबकर मनुष्य अपने को अपने रचयिता ब्रह्म को भूल जाता है। इसीलिए वासना त्याज्य है। यदि मनुष्य अपनी इच्छाओं को छोड़ सके, तो वह बहुत ऊपर उठ सकता है। ईश्वर के तीन गुण हैं—सत्, चित् और आनंद! तीनों ही गुण वासना से रहित विशुद्ध मन को मिल सकते हैं, पर वासना के होते हुए ममत्व प्रधान रहता है, और ममत्व के भ्रांतिकारक आवरण के रहते हुए इनमें से किसी एक का पाना असंभव है। विशालदेव! मेरा शिष्य होकर तुम्हें जो पहला काम करना पड़ेगा, वह यह होगा कि तुम वासना को त्यागकर अपने मन को शुद्ध करो। यह एक तपस्या है; पर इस तपस्या में दु:ख नहीं है। इच्छाओं को दबाना उचित नहीं, इच्छाओं को तुम उत्पन्न ही न होने दो। यदि एक बार इच्छा उत्पन्न हो गई, तो फिर वह प्रबल रूप धारण कर लेगी। इसीलिए तुम्हारा कर्तव्य होगा, इच्छाओं को सदा के लिए मार डालना। बोलो, इतना कर सकोगे?''

विशालदेव ने उत्तर दिया—''देव! इतना करने का प्रयत्न करूंगा। कर सकूंगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। आपका बतलाया हुआ मार्ग सरल है, पर उसमें कुछ आपत्ति अवश्य है। वासनाओं का हनन क्या जीवन के सिद्धांतों के प्रतिकूल नहीं है? मनुष्य उत्पन्न होता है, क्यों? कर्म करने के लिए। उस समय कर्म करने के साधनों को नष्ट कर देना क्या विधि के विधान के प्रतिकूल नहीं है? देव, जिस समय आप इस संबंध में मेरा भ्रम निवारण कर देंगे, उस समय मैं आपके निर्धारित मार्ग पर चलूंगा।''

कुमारगिरि संभवत: विशालदेव से इस उत्तर को पाने के लिए तैयार बैठे थे। उन्होंने कहा—''तुमने उचित ही कहा है विशालदेव, क्योंकि तुम पर एक गुरु का प्रभाव है। उस प्रभाव को दूर करके मुझे तुम पर अपना प्रभाव जमाना पड़ेगा। मैं तुम्हारा भ्रम निवारण कर दूंगा, पर आज नहीं। भ्रम में पड़े हुए गुरु के शिष्यों में भ्रमों का होना स्वाभाविक ही है; पर, देखता हूं विशालदेव! आचार्य रत्नांबर के विचार किसी अंश तक नास्तिकता की ओर झुके हुए हैं। मैं आस्तिक हूं। इसके पहले कि तुम मुझसे कुछ सीख सको, तुम्हें दो बातों को मानना पड़ेगा। प्रथम यह कि ब्रह्म है और दूसरा यह है कि कर्तव्य जीवन का प्रधान अंग है।''

विशालदेव ने उत्तर दिया—"देव ! मैं इन दो बातों को मानता हूं।"

कुमारगिरि उठ खड़े हुए—"तो फिर निश्चिंत हो गया। मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा और तुम्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाकर पाप से परिचित करा दूंगा।"

तीसरा परिच्छेद

श्वेतांक ब्रह्मचारी था। उसका क्षेत्र था अनुभव-रहित अध्ययन और उसका ध्येय था ज्ञान। उसकी अवस्था उस समय प्रायः पच्चीस वर्ष की थी, और उतने काल में उसने दर्शनों तथा स्मृतियों का अध्ययन कर लिया था। उसने व्याकरण पढ़ा था और साहित्य पढ़ा था। काव्य में प्रेम के सजीव वर्णनों को उसने ध्यान से पढ़ा था, उसको समझने की चेष्टा भी की थी; पर समझ न सका था। स्त्री को वह न जानता था, यौवन की मादकता का उसे परिचय न था।

बीजगुप्त के भवन में ब्रह्मचारी श्वेतांक और नर्तकी चित्रलेखा का साथ हुआ। बीजगुप्त ने जिस समय श्वेतांक से चित्रलेखा का परिचय कराया था उसने केवल हंसी की थी; पर जब उसने परिस्थितियों पर विचार किया, उसे कौतूहल हुआ। ब्रह्मचारी और नर्तकी। बीजगुप्त इस संयोग पर हंस पड़ा।

पर बीजगुप्त की हंसी श्वेतांक के जीवन में एक हलचल थी। प्रायः नित्य ही रात के समय श्वेतांक को चित्रलेखा के साथ, उसके भवन तक पहुंचाने जाना पड़ता था। उस समय चित्रलेखा मद से उतावली रहती थी। चित्रलेखा की आंखों की मस्ती श्वेतांक के हृदय में एक प्रकार का कंपन उत्पन्न कर देती थी। स्त्री और मदिरा—तेल से भरे दीपक की प्रज्वलित ज्योति थी, जिसके चारों ओर श्वेतांक एक पतिंगे की भांति चक्कर काट रहा था। श्वेतांक जिस समय चित्रलेखा की ओर देखता था, एक विचित्र प्रकार के सुख का अनुभव करता था और वह सुख क्या था? अज्ञात चाह का कंपन। जिस समय चित्रलेखा की अधखुली मस्त आंखें श्वेतांक की आंखों से मिल जाती थीं, उस समय श्वेतांक पागल की भांति झूमने लगता था।

बीजगुप्त के भवन में श्वेतांक की गणना बीजगुप्त के छोटे भाई की तरह होती थी। बीजगुप्त के सेवक श्वेतांक को अपनी ही कोटि का न मानते थे, वे बीजगुप्त की भांति श्वेतांक को अपना स्वामी समझते थे। भोग-विलास के समस्त साधन श्वेतांक के सामने उपस्थित थे। नगर के प्रभावशाली

व्यक्तियों से उसका परिचय हो गया था। एक गहरे अंधकार से निकलकर श्वेतांक एक आलोकमय संसार में आ पड़ा था, इसीलिए अपनी स्थिति पर वह स्वयं ही विश्वास न कर सका, पर धीरे-धीरे वह परिस्थितियों के अनुकूल होने लगा। उसे अनुभव हुआ कि वह संसार में ही है, पाप और पुण्य के बीच में है, वासनाओं का उसके चारों ओर जमघट है। उसको यह विदित हो गया कि वह संसार की लहरों में बह रहा है।

उस दिन बीजगुप्त कारणवश बाहर चला गया था। काम इतना आवश्यक और अचानक आ पड़ा था कि बीजगुप्त संध्या के समय न लौट सका। निर्धारित समय पर चित्रलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वार पर रुका। श्वेतांक ने चित्रलेखा का स्वामी से रिक्त गृह में स्वागत किया। दोनों बीजगुप्त की बैठक में गए। बीजगुप्त को न देखकर चित्रलेखा ने पूछा—"तुम्हारे स्वामी कहां हैं ?"

'तुम्हारे स्वामी कहां हैं ?'—ब्रह्मचारी ने नर्तकी के मुख से यह प्रश्न सुना और उसे बुरा भी लगा। यह वाक्य तीर की भांति पैना था, और यदि यही वाक्य किसी दूसरी साधारण स्त्री के मुख से निकला होता, तो श्वेतांक शायद उसका कटु उत्तर देता, या इस पर बुरा तक मानता। श्वेतांक को प्रथम बार अपनी स्थिति तथा अपनी लघुता का आभास हुआ, और साथ ही उसे परिताप भी हुआ; पर अपने मनोभावों को दबाकर उसने उत्तर दिया, "देवी, कार्यवश वे कहीं बाहर गए हैं !"

चित्रलेखा ने पूछा—"कब तक उनके आने की संभावना है ?"

"आते ही होंगे !"

"श्वेतांक ! मुझे प्यास लगी है।"

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ। उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो चुका था, और उसी के साथ उसको बीजगुप्त के वे शब्द भी याद हो आए थे—"चित्रलेखा तुम्हारी स्वामिनी है।" अपने हाथ से वह स्वयं ही स्वर्ण-पात्र में शीतल जल ले गया।

चित्रलेखा ने पानी देखा और मुस्कराई—"श्वेतांक ! तुम निरे बालक हो !"

श्वेतांक चित्रलेखा के इस व्यंग को न समझ सका—"देवी, कौन-सी भूल हुई है ?"

इस बार चित्रलेखा जोर से हंस पड़ी—"श्वेतांक ! तुम अब भी नहीं समझ सके। पिपासा तृप्त होने की चीज नहीं। आग को पानी की आवश्यकता नहीं होती, उसे घृत की आवश्यकता होती है, जिससे वह और भड़के। जीवन एक अविकल पिपासा है। उसे तृप्त करना जीवन का अंत कर देना है। मुझे जल की आवश्यकता नहीं, मुझे मदिरा चाहिए।"

श्वेतांक इस उत्तर से चकित हो गया। बात कितनी भयानक थी; पर कितनी तर्कपूर्ण थी। श्वेतांक भी हंस पड़ा—"शायद मुझे पाटलिपुत्र की सर्वसुंदरी स्त्री का शिष्य होना पड़ेगा देवि!"—इतना कहकर उसने चित्रलेखा के सामने मदिरा का प्याला बढ़ाया।

एक घूंट पीकर चित्रलेखा ने मदिरा का प्याला श्वेतांक के सामने रख दिया। उस समय वह तकिए के सहारे बैठी हुई थी। उसके सिर का वस्त्र खिसक गया था और उसके सिर के बाल अंधकार की भांति काले थे। उन बालों से गुंथी हुई मोतियों की माला प्रकाश की भांति चमक रही थी। कितना सुंदर था उसका वेश—श्वेतांक ने कभी ऐसी अनुपम सुंदरी की कल्पना तक न की थी। चित्रलेखा का यौवन उन्माद का प्रतिबिंब था। उसके अरुण कपोलों पर लाली थी। उसके अधर मंद मुस्कान से भीगे हुए थे। उसकी आंखें हंस रही थीं।

श्वेतांक मौन-भाव से चित्रलेखा के सौंदर्य को निरख रहा था। चित्रलेखा ने पूछा—"देखती हूं श्वेतांक, तुम मदिरा नहीं पीते। मैंने तुम्हारे सामने मदिरा का पात्र बढ़ा दिया है; पर तुम्हारे हाथ इसे मुंह तक ले जाने का साहस नहीं कर सकते। मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूंगी, उसका ठीक-ठीक उत्तर देना होगा।"

श्वेतांक ने अपना सिर झुका दिया।

"तुम ब्रह्मचारी रहे हो, और तुम्हारे गुरु ने तुमसे मदिरा पीने का निषेध किया होगा! इसका कारण मैं जानना चाहती हूं।"

श्वेतांक ने धीरे से उत्तर दिया—"देवि! संयम जीवन का एक आवश्यक अंग है, और मदिरा और संयम में विरोध है!"

"और संयम का लक्ष्य क्या है?"

"सुख और शांति।"

चित्रलेखा ने मदिरा के पात्र को अपने अधरों से लगाते हुए पूछा—"और जीवन का लक्ष्य?"

चित्रलेखा की आंखें मादकता से कुछ-कुछ लाल होने लगी थीं, श्वेतांक ने चित्रलेखा के स्वर में एक प्रकार के संगीत का अनुभव किया, उसके वार्तालाप में कविता का। उसने उत्तर दिया—"जीवन का लक्ष्य? सुख और शांति!"

"यहीं पर तुम भूलते हो नवयुवक!"—चित्रलेखा सम्हलकर बैठ गई—"सुख तृप्ति और शांति अकर्मण्यता, पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझनेवाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है; और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शांति का कोई स्थान नहीं।"—इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र श्वेतांक के होठों पर लगा दिया।

श्वेतांक ने एक बार मदिरा के पात्र को हटा देने को सोचा; पर चित्रलेखा की हंसती हुई आंखों में विचित्र जादू था। वह न तो चित्रलेखा को रोक सका और न अपने ही को। मदिरा उसके गले के नीचे उतर गई।

इसी समय बीजगुप्त ने पीछे से हंसते हुए कहा—"ब्रह्मचारी! आज तुम्हें नर्तकी ने दीक्षा दी है, इसके उपलक्ष्य में मैं चित्रलेखा को बधाई देता हूं।"

श्वेतांक मोह-निद्रा से एकाएक चौंक उठा। बीजगुप्त की हंसी ने उसकी भूल का आभास करा दिया। उसने चित्रलेखा की ओर देखा और फिर बीजगुप्त की ओर। इसके बाद उसने मस्तक नीचा कर लिया। बीजगुप्त हंसता हुआ वस्त्र बदलने चला गया। बीजगुप्त के जाने के बाद श्वेतांक ने चित्रलेखा से कहा—"देवि! आज तुमने मेरी साधना चूर-चूर कर दी। तुमने यह क्यों किया? तुमने मेरे हृदय में एक ज्वाला प्रज्वलित कर दी है। किसलिए? देवि मेरे जीवन में तुम बवंडर बनकर एकाएक क्यों आ पड़ीं?"—इतना कहते-कहते श्वेतांक ने चित्रलेखा का हाथ जोर से पकड़ लिया।

चित्रलेखा ने हंसते हुए उत्तर दिया—"श्वेतांक, तुम भूल करते हो। जिसे तुम साधना कहते हो, वह आत्मा का हनन है। मैंने तुम्हें केवल इतना दिखलाया है कि मादकता जीवन का प्रधान अंग है। रही तुम्हारे हृदय में ज्वाला उत्पन्न करने की बात, मैंने तो तुम्हें केवल जीवन का वास्तविक महत्व दिखलाया है।"—चित्रलेखा एकाएक गंभीर हो गई। उसने श्वेतांक का हाथ झटक दिया—"श्वेतांक, यह याद रखना कि तुम्हारे जीवन में मेरा आना असंभव है। सब कुछ होते हुए भी मैं अपनी मनोवृत्ति जानती हूं। मैं संसार में केवल एक मनुष्य से प्रेम करती हूं और वह बीजगुप्त है। कभी इस बात की कल्पना तक न करना कि मैं तुम्हारे जीवन में आ सकती हूं। अब तुम जा सकते हो।"

श्वेतांक का मुख पीला पड़ गया। वह एक नर्तकी से हारा—ज्ञान में, कर्तव्य में और व्यक्तित्व में। उसने कहा—"जो आज्ञा देवि!" —और इतना कहकर अपमानित तथा विजित ब्रह्मचारी द्वार की ओर बढ़ा!

चित्रलेखा ने कुछ सोचा और कुछ समझा। द्वार के बाहर गए श्वेतांक को उसने पुकारा—"श्वेतांक ठहरो, तुमसे कुछ और कहना है, यहां लौट आओ!"

श्वेतांक रुक गया। वह लौटा नहीं, घूमकर उसने उत्तर दिया—"देवि! क्या अभी और भर्त्सना करना शेष है? क्या अपनी आत्मा की निर्बलता का इतना पुरस्कार यथेष्ट नहीं है? देवि, तुम मेरी स्वामिनी हो और साथ-साथ मेरे जीवन की ···! नहीं, क्षमा करना! तुम केवल मेरी स्वामिनी हो, इसलिए

तुम्हारी आज्ञा मुझको शिरोधार्य है। क्या कहना है देवि ?"—उस समय श्वेतांक की आंखों में जल भर आया था।

चित्रलेखा के हृदय में श्वेतांक—बालक श्वेतांक—की इन बातों से आघात पहुंचा। उसने कहा—"श्वेतांक! मैंने भूल की थी। मैंने तुमसे कटु बर्ताव किया, इसके लिए तुमसे क्षमा चाहती हूं। श्वेतांक! मेरा तुम पर अनुराग है, तुम मेरे भाई के समान हो, और तुम्हारे दु:ख से मुझे दु:ख होता है। मैंने अनजाने में शायद तुम्हारा अपमान भी किया है, इसके लिए मैं तुमसे क्षमा मांगती हूं।"

चित्रलेखा की क्षमा-प्रार्थना से श्वेतांक का दु:ख और क्षोभ दूर हो गया। उसके हृदय की यंत्रणा हिम की भांति पिघल गई। उसने चित्रलेखा में एक देवी की मूर्ति देखी—एक प्रकार का आलोक देखा। उसकी दृष्टि में अब चित्रलेखा नर्तकी न रह गई, उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो उसका चित्रलेखा से पारलौकिक संबंध है। उसने कहा—"देवि! क्षमा-याचना की कोई आवश्यकता नहीं। भूल मेरी थी, और इस भूल का मुझे दंड मिलना चाहिए था; पर देवि! तुमने मुझे दंड देने की जगह मुझ पर कृपा की है। तुमने मुझे डूबने से बचाकर मुझ पर कितना अनुग्रह किया है, यह मैं नहीं कह सकता। तुम मुझे क्षमा करना देवि!"—इतना कहकर श्वेतांक भवन के बाहर चला गया, और चित्रलेखा मूर्ति की भांति निश्चल खड़ी रह गई। अनजान में एक अबोध बालक को उसने अपने यौवन की मादकता का शिकार बनाया था, इस पर उसे दु:ख था।

श्वेतांक सीधे बीजगुप्त के पास पहुंचा। पहुंचते ही वह बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ा। उसने केवल इतना ही कहा—"स्वामी, मुझे दंड दें।"

बीजगुप्त श्वेतांक के व्यवहार से चौंक उठा। उसने श्वेतांक को उठाकर पूछा—"श्वेतांक, क्यों? क्या बात है?"

श्वेतांक ने भर्राए हुए स्वर में उत्तर दिया—"स्वामी, मैंने आपके साथ विश्वासघात करने का अपराध किया है। मैंने उस स्त्री से प्रेम करने का अपराध किया है, जो आपसे प्रेम करती है और जिससे आप प्रेम करते हैं, और साथ ही जो मेरी स्वामिनी है।"

बीजगुप्त सब कुछ समझ गया। वह मन-ही-मन मुस्कराया—"श्वेतांक तुमने यह कैसे जाना कि वह स्त्री भी मुझसे प्रेम करती है?"

"उसने मुझसे स्वयं ही यह कहा है।"—श्वेतांक के ऊपर मदिरा का प्रभाव आ गया था। उसने अपने शरीर में एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव किया—"आज मैंने उसके हाथ से मदिरा पीकर अपने संयम को तोड़ दिया, और यह इसलिए कि जिस स्त्री से मैं प्रेम करता हूं, उसके हाथ की मदिरा को मैं अस्वीकार न कर सका।"

कृत्रिम गंभीरता धारण करते हुए बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! यदि वह स्त्री तुमसे यह न कहती कि वह मुझसे प्रेम करती है, और यदि वह तुम्हें आत्मसमर्पण करने पर प्रस्तुत हो जाती, तो तुम क्या करते?"

कुछ देर तक सोचकर श्वेतांक ने कहा—"शायद मैं स्वामी से क्षमा प्रार्थना भी न करता और स्वामी के साथ विश्वासघात करके एक गुरु अपराध कर देता।"

बीजगुप्त ने श्वेतांक की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"श्वेतांक, मुझसे क्षमा-प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुमने जो कुछ किया, उसके विपरीत तुम्हारी परिस्थिति में दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता। तुमने जो कुछ किया, वह उचित किया और जो कुछ करते वह भी उचित करते। उसमें तुम्हारा बिल्कुल दोष न होता, दोष होता केवल परिस्थितियों का; पर मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुमने अपराध किया; पर तुमने जिसके प्रति अपराध किया था उससे अपना अपराध कहकर अपने अपराध को धो दिया। तुम मुझसे सत्य बोले, और यही तुम्हारे लिए उचित भी था। रही मेरे साथ विश्वासघात करने की बात, वह श्वेतांक तुम भूलते हो। तुमने अभी संसार में प्रवेश किया है, तुम संसार के अनुभवों से रहित हो। न जाने कितनी बार तुम्हें अनुभव की परीक्षा की कसौटी पर चढ़ना पड़ेगा, उस समय तुम्हें कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखना पड़ेगा। इच्छाएं प्रबल रूप धारण करके तुम्हें सतावेंगी और तुम्हें उनका दमन करना पड़ेगा। यहीं पर तुम्हारी आत्म-शक्ति की परीक्षा होगी। विजय और पराजय का क्षेत्र संसार है, निर्जन नहीं है।"

श्वेतांक रो रहा था, उसने उत्तर दिया—"स्वामी, यह सब करूंगा; पर इस अपराध का दंड मिलना चाहिए।"

बीजगुप्त ने श्वेतांक के सिर पर हाथ रखकर कहा—"रोते क्यों हो? इस अपराध का दंड चाहते हो? पर अपराध तुमने किया ही नहीं, फिर दंड कैसा? अपराध कर्म में होता है, विचार में नहीं। विचार कर्म का साधन-मात्र है। फिर भी यदि दंड चाहते हो, तो मैं तुम्हें सबसे कठिन दंड दूंगा। वह दंड यह होगा कि तुम्हें नित्य की भांति भविष्य में चित्रलेखा को उसके भवन तक पहुंचाना पड़ेगा।"

चौथा परिच्छेद

विशालदेव ने कुमारगिरि में एक महान आत्मा देखी। कुमारगिरि के ज्ञान

और तेज के सामने वह झुक गया। कुमारगिरि के तर्क अकाट्य थे, विशालदेव के सब भ्रमों को वह क्षण में निवारण कर देता था। कुमारगिरि ने विशालदेव को योग का अभ्यास कराना आरंभ कर दिया। कुमारगिरि को योग्य शिष्य मिला और विशालदेव को योग्य गुरु।

उस दिन कुमारगिरि विशालदेव को उपासना का महत्व बतला रहे थे। उस समय सूर्यास्त हो चुका था, निर्जन में कुमारगिरि की कुटी का दीपक टिमटिमा रहा था। अचानक द्वार पर पद-ध्वनि सुनाई दी और साथ ही किसी ने कहा—"भूले हुए पथिक रात्रि-भर के लिए आश्रय चाहते हैं।"

कुमारगिरि ने उत्तर दिया—"उनका स्वागत है। मेरी कुटी प्रत्येक भूले हुए प्राणी के लिए खुली है।"—अपने उत्तर पर कुमारगिरि स्वयं हंस पड़े।

उसी समय एक स्त्री के साथ एक पुरुष ने कुटी में प्रवेश किया।

स्त्री को देखकर योगी कुमारगिरि चौंक उठे। उन्होंने पुरुष से कहा—"अतिथि! तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया कि तुम्हारे साथ एक स्त्री भी है। तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि यह उस योगी की कुटी है, जो संसार छोड़ चुका है।"

पुरुष ने उत्तर दिया—"भगवन्, मुझे यह तो ज्ञात है कि यह एक योगी की कुटी है; पर यह नहीं सोचा था कि एक इंद्रियजित योगी को केवल रात्रि-भर के लिए एक स्त्री को और उस स्त्री को जो एक पुरुष के साथ है, आश्रय देने में संकोच होगा।"

इस उत्तर से कुमारगिरि निस्तेज हो गए। उस समय तक स्त्री आसन पर बैठ गई थी और दीपक के मंद प्रकाश के सामने उसका मुख हो गया था। कुमारगिरि ने कहा—"अतिथि! मैंने इस कुटी में स्त्री को आश्रय देने में संकोच किया था, वह केवल इसलिए कि स्त्री अंधकार है, मोह है, माया है, और वासना है। ज्ञान के आलोकमय संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं। पर फिर भी तुम दोनों मेरे अतिथि हो; इसलिए तुम दोनों का अतिथि-सत्कार करना मेरा कर्तव्य है।"

स्त्री अभी तक इस वार्तालाप को आश्चर्य तथा कौतूहल के साथ सुन रही थी। उसने कुमारगिरि के वाक्य समाप्त होने पर उनके सामने अपना मस्तक नमाकर कहा—"प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अंधकार का प्रणाम है।"

वाक्य तीर की भांति पैना तथा घातक था। स्वर संगीत की भांति कोमल। सौंदर्य में कवित्व था, वासना की मस्ती में अहंकार! कुमारगिरि इस असाधारण स्त्री का असाधारण अभिवादन सुनकर चौंक-से उठे, उन्होंने उस स्त्री की ओर ध्यान से देखा। स्त्री को देखकर वे चकित हो गए, अपने जीवन में उन्होंने इतनी सुंदर स्त्री न देखी थी। स्त्री के उस वाक्य का

उत्तर देना उन्होंने उचित न समझा, पुरुष से उन्होंने कहा– "अपने अतिथियों का परिचय पाने का मुझको अधिकार प्राप्त है।"

पुरुष ने उत्तर दिया–"भगवन्! इस दास का नाम बीजगुप्त है और वह पाटलिपुत्र का एक सामंत है, और यह स्त्री पाटलिपुत्र की सर्वसुंदरी नर्तकी चित्रलेखा है।"

"बीजगुप्त और चित्रलेखा!"–इस बार कुमारगिरि चित्रलेखा की ओर मुड़े।–"नर्तकी चित्रलेखा, तुम्हारे कवित्व की कर्कशता पर उन्माद का आवरण है, तुम्हारे विष को तुम्हारा सौंदर्य छिपाए हुए है। तुम मेरी अतिथि हो और तुमने मेरी अभ्यर्थना की है। आशीर्वाद देना मेरा धर्म है, भगवान् तुम्हें सुमति प्रदान करें।"

चित्रलेखा हंस पड़ी। उसके मधुर हास्य में मन को लुब्ध कर देनेवाला पराग था–"योगी! सुमति के अर्थ में भेद होता है, अनुराग का सुख विराग का दुःख है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सिद्धांतों को निर्धारित करता है तथा उन पर विश्वास भी करता है। प्रत्येक मनुष्य अपने को ठीक मार्ग पर समझता है और उसके मतानुसार दूसरे सिद्धांत पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति गलत मार्ग पर है।"

अनुराग की दासी नर्तकी ने विराग के स्वामी योगी का सामना किया। क्रांति और शांति का मुकाबला था, जीवन और मुक्ति में होड़ थी। कुमारगिरि ने अविचलित भाव से उत्तर दिया–"पर सत्य एक है, वास्तविकता का ज्ञान! मार्ग वही ठीक है, जिससे शांति तथा सुख मिल सके।"–कुमारगिरि का स्वर गंभीर था, तपस्या का तेज नवयुवक योगी के सुंदर वेश को आलोकित कर रहा था। कुमारगिरि की बड़ी-बड़ी आंखों में शांति की ज्योति थी।

योगी की आंखें नर्तकी की आंखों से एक क्षण के लिए मिल गईं। वासना तपस्या के सामने कांप उठी। चित्रलेखा ने अनुभव किया कि जिस योगी के सामने वह बैठी हुई है, वह बहुत उच्च कोटि का है। फिर भी उसने साहस के साथ कहा–"शांति और सुख! शांति अकर्मण्यता का दूसरा नाम है; और रहा सुख, उसकी परिभाषा एक नहीं।"

योगी कुमारगिरि नर्तकी चित्रलेखा के मुख से दर्शन के विकृत सिद्धांतों को तर्कयुक्त सुनकर स्तब्ध रह गए। जिस स्त्री से वे बातें कर रहे थे, वह सुंदरी होने के साथ-साथ विदुषी भी थी। उस स्त्री में विचार-शक्ति थी और प्रतिभा भी थी। प्रतिभा का मुकाबला प्रतिभा ही कर सकती है, और ज्ञान के क्षेत्र में प्रतिभा तथा मौलिकता का सर्वोच्च स्थान है। कुमारगिरि कुछ देर तक मौन रहे, इसके बाद उन्होंने धीरे से दृढ़ता के साथ कहा–"ठीक कहती हो, शांति अकर्मण्यता का दूसरा नाम है, और

अकर्मण्यता ही मुक्ति है। जिसे सारा विश्व अकर्मण्यता कहता है, वह वास्तव में अकर्मण्यता नहीं है; क्योंकि उस स्थिति में मस्तिष्क कार्य किया करता है। अकर्मण्यता के अर्थ होते हैं—जिस शून्य से उत्पन्न हुए हैं, उसी में लय हो जाना। और वही शून्य जीवन का निर्धारित लक्ष्य है। और अभी तुमने सुख की परिभाषा की बात कही थी, उसे भी मैं ठीक मानता हूं! पर सुख एक ही है, उसमें भेद नहीं होता। वह सुख क्या है, जब मनुष्य यही जान गया, तब वह साधारण परिस्थिति से कहीं ऊपर उठ जाता है।"—चित्रलेखा ने कुमारगिरि की बातों में सार देखा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह नवयुवक योगी की ओर स्वयं ही बिना अपनी इच्छा के आकर्षित होती जाती है। उसने एक बार फिर साहस किया—"शून्य! योगी, तुम्हारे उस शून्य पर विश्वास ही कौन करता है? जो कुछ सामने है, यही सत्य है और नित्य है। शून्य कल्पना की वस्तु है। शून्य की महत्ता की दुहाई देनेवाले योगी! क्या तुम अपने और मेरे ममत्व में भेद देखते हो? यदि हां, तो तुम शून्य पर विश्वास नहीं करते, और यदि नहीं, तो तुम्हारा ज्ञान और अंधकार, सुख और दु:ख, स्त्री और पुरुष, तथा पाप और पुण्य का भेदभाव मिथ्या है। मनुष्य को जन्म देते हुए ईश्वर ने उसका कार्यक्षेत्र निर्धारित कर दिया। उसने मनुष्य को इसलिए जन्म दिया है कि वह संसार में आकर कर्म करे, कायर की भांति संसार की बाधाओं से मुख न मोड़ ले। और सुख! सुख तृप्ति का दूसरा नाम है। तृप्ति वहीं संभव है, जहां इच्छा होगी, वासना होगी।"

योगी गंभीर था, और नर्तकी मुस्करा रही थी। बीजगुप्त अपनी शिष्या, अथवा अपनी जीवन-संगिनी चित्रलेखा के मुख से अपने सिद्धांतों को तर्कपूर्वक सुनकर मन-ही-मन चित्रलेखा पर मुग्ध था, और विशालदेव नर्तकी के ज्ञान से चकित। दोनों कुमारगिरि के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुमारगिरि कुछ देर तक मौन-भाव से बैठे रहे, फिर उन्होंने गंभीरतापूर्वक कहा—"ईश्वर! ईश्वर और मनुष्य में कोई भेद नहीं। भेद केवल बाह्य है—सांसारिक है। माया और ब्रह्म के संयोग को ही ममत्व कहते हैं, और माया वास्तव में ब्रह्म का अंश होते हुए भी बाह्य दृष्टि से उससे पृथक् है। ब्रह्म जब तक माया में लिप्त रहता है, तब तक वह संसार के जाल में फंसा रहता है, माया को छोड़ देने के बाद वह स्वयं हो जाता है। तुम और मैं—वास्तव में यहां कोई भेद नहीं है; क्योंकि तुम भी ब्रह्म का अंश हो और मैं भी। पर, भेद केवल इतना है कि तुम माया-मिश्रित ब्रह्म हो और मैं माया को छोड़ चुका हूं। इसलिए मैं माया को जीवन से पृथक् रखना चाहता हूं कि कहीं पीछे न चले जाना पड़े। और

सुख कहते हैं तृप्ति को, यहां भी तुम भूलती हो। यदि तृप्ति ही संतोष का एकमात्र साधन हो सके, तो वह सुख अवश्य है, पर कर्म-जाल में फंसे रहने पर तृप्ति के साथ संतोष नहीं होता। ब्रह्म, माया के संयोग से स्वयं को भूल जाता है और कर्म-जाल में भटकने लगता है, पर जिस समय वह माया को छोड़ देता है और अपने को जान लेता है, वह तृप्त हो जाता है और साथ ही उसे संतोष हो जाता है। दुःखमय संसार को छोड़ देने ही को सुख कहते हैं।"— कुमारगिरि थोड़ी देर तक रुके। फिर चित्रलेखा को उत्तर देने का अवसर दिए बिना ही उन्होंने कहा—"और याद रखना! तर्क का अंत नहीं होता, सत्य अनुभव की वस्तु है। अनुभव और विश्वास, बिना इसके मनुष्य का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है।"—इतना कहकर कुमारगिरि उठ खड़े हुए—"रात्रि अधिक बीत रही है, विश्राम करना उचित होगा।"

चित्रलेखा को कुमारगिरि के इस उत्तर से संतोष न हुआ, कुमारगिरि भी यही अनुभव कर रहा था; पर साथ-साथ कुमारगिरि के व्यक्तित्व ने चित्रलेखा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। योगी ने नर्तकी में ज्ञान देखा, और नर्तकी ने योगी में सौंदर्य। एक विचित्र बात थी। दोनों एक-दूसरे से संतुष्ट न थे, पर प्रभावित अवश्य थे। दोनों ने एक-दूसरे में आकर्षण देखा, योगी ने ज्ञान का, और नर्तकी ने सौंदर्य का; पर बीजगुप्त ने क्या देखा, यह वह स्वयं ही न समझ सका। कुमारगिरि और चित्रलेखा की बातचीत से उसके हृदय में एक प्रकार की अशांति उत्पन्न हो गई। अशांति सिद्धांतों के संबंध में न थी। फिर किस प्रकार की अशांति थी, इसे वह जानने की लाख चेष्टा करता हुआ भी न जान सका। उसके हृदय ने चित्रलेखा के हृदय में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का एक क्षीण आभास पा लिया था; पर वह इस पर विश्वास न कर सका।

कुमारगिरि ने कहा—"मेरा शिष्य विशालदेव आज रात को मेरी कुटी में विश्राम करेगा, उसकी कुटी खाली है, अतिथि वहां जा सकते हैं।"

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ, साथ ही चित्रलेखा। चलते हुए चित्रलेखा ने कहा—"योगी! तपस्या जीवन की भूल है, यह मैं तुम्हें बताए देती हूं। तपस्या की वास्तविकता है आत्मा का हनन। अच्छा, श्रीचरणों को नर्तकी चित्रलेखा का प्रणाम।"—इतना कहकर वह हंसते हुए बीजगुप्त के साथ कुटी के बाहर चली गई।

चित्रलेखा के जाने के बाद कुमारगिरि हंस पड़े—"ठीक कहती हो! तपस्या कहते हैं आत्मा के हनन को, और आत्मा ब्रह्म और माया के संयोग को कहते हैं। जिस समय आत्मा मर जाती है, माया का विकार लोप हो जाता है और सत्, चित्, आनंद ब्रह्म रह जाता है, पर नर्तकी, तुममें यदि अनुभव होता, यदि तुम्हारी परिस्थिति दूसरी होती तो शायद तुम भी इस

रहस्य को समझ सकती। तुममें ज्ञान है; पर उस ज्ञान का कोई पथ-प्रदर्शक नहीं है। मुझे तुम पर दुःख है।"

विशालदेव बीजगुप्त और चित्रलेखा को अपनी कुटी में पहुंचाकर गुरु की कुटी में लौट गया। शयन के पहले बीजगुप्त ने कहा—"चित्रलेखा!"

चित्रलेखा ने उत्तर दिया—"प्रियतम!"

बीजगुप्त ने एक ठंडी श्वास लेकर कहा—"हृदय पर एक प्रकार का भार-सा मालूम होता है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो हम दोनों के जीवन पर दुःख के बादल मंडरा रहे हैं। चित्रलेखा! कुमारगिरि योगी है और संभवतः उसमें आकर्षण-शक्ति भी है।"

चित्रलेखा का मुख एक क्षण के लिए पीला पड़ गया; पर उसने सम्हल-कर उत्तर दिया—"प्रियतम! कुमारगिरि योगी है और मूर्ख है। उसकी आत्मा मर चुकी है।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त को और अपने को धोखा देने का प्रयत्न किया। उसने फिर कहा—"कुमारगिरि निर्जन का निवासी है और हम दोनों कर्मक्षेत्र के अभिनेता हैं। कुमारगिरि ने वासनाओं का हनन कर दिया है और हम दोनों वासनाओं पर विश्वास करते हैं। कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है मस्ती का पागलपन! प्रियतम! संसार में कोई भी व्यक्ति हम दोनों के बीच में नहीं आ सकता।"

बीजगुप्त का मुख प्रसन्नता से चमक उठा—"भगवान् ऐसा ही करें!"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा दे दिया; पर वह अपने को धोखा न दे सकी, उसने मन-ही-मन कहा—"पर कुमारगिरि सुंदर अवश्य है।"

पांचवां परिच्छेद

महायज्ञ के अभिमंत्रित धूम्र से सुवासित राज-प्रासाद के विशाल प्रांगण में सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के अतिथि आसीन थे। रत्नजटित स्वर्ण के राज-सिंहासन पर महाराज विराजमान थे और उनका मुख पूर्व की ओर था। उनके दक्षिण ओर क्रम से यथायोग्य विशाल साम्राज्य के आमंत्रित सामंतगण बैठे थे और वाम पार्श्व में राज्य के प्रधान कर्मचारी। सामने कर्मकांडी ब्राह्मणों तथा तपस्वियों का जमघट था।

यह सभा, प्रथा के अनुसार, महायज्ञ के बाद दर्शन पर तर्क करने के लिए एकत्र हुई थी। महाराज चंद्रगुप्त ने हंसकर अपने प्रधानमंत्री चाणक्य की ओर देखा—"नीति-कुशल मंत्रिवर! आपका नीतिशास्त्र अनेक स्थानों पर

धार्मिक सिद्धांतों की अवहेलना करता है। इस विरोध का क्या कारण है? क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि नीतिशास्त्र धर्म के अंतर्गत है अथवा नहीं?''

चाणक्य ने उठकर अपने सामने आसीन विद्वन्मंडली को मस्तक नमाया और फिर सम्राट् को अभिवादन करके वे बैठ गए। बैठकर उन्होंने उत्तर दिया—''महाराज का कथन सर्वथा उचित है। मेरे नीतिशास्त्र में कहीं-कहीं निर्धारित धर्म की रूढ़ियों के विरोधी सिद्धांत मिलते हैं, यह स्पष्ट है और यह मैं मानता हूं; पर उसके साथ ही मैं यह बतला देना चाहता हूं कि धर्म समाज द्वारा निर्मित है। धर्म ने नीतिशास्त्र को जन्म नहीं दिया है, वरन् इसके विपरीत नीतिशास्त्र ने धर्म को जन्म दिया है। समाज को जीवित रखने के लिए समाज द्वारा निर्धारित नियमों को ही नीतिशास्त्र कहते हैं, और इस नीतिशास्त्र का आधार तर्क है। धर्म का आधार विश्वास है और विश्वास के बंधन से प्रत्येक मनुष्य को बांधकर उससे अपने नियमों का पालन कराना ही समाज के लिए हितकर है। इसीलिए ऐसी भी परिस्थितियां आ सकती हैं, जब धर्म के विरुद्ध चलना समाज के लिए कल्याणकारक हो जाता है और धीरे-धीरे धर्म का रूप बदल जाता है।''

चाणक्य के वाक्य समाप्त होते ही विद्वन्मंडली में घोर निस्तब्धता छा गई। महाराज चंद्रगुप्त ने गर्व से अपने मंत्री की ओर देखा और फिर अपने सामने उपस्थित विद्वन्मंडली की ओर। मंत्री ने बहुत बड़ी बात कह डाली थी और उनकी बात में यथेष्ट सार था; फिर बात भी नई थी, निर्धारित सिद्धांतों के प्रतिकूल। इस बात का उत्तर कौन देगा, लोग इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

विद्वन्मंडली में बैठे हुए एक नवयुवक योगी ने शांत भाव से उत्तर दिया—''राजन्! ईश्वर मनुष्य का जन्मदाता है और मनुष्य समाज का जन्मदाता है। धर्म ईश्वर का सांसारिक रूप है, वह मनुष्य को ईश्वर से मिलाने का साधन है। धर्म की अवहेलना, ईश्वर की अवहेलना है, सत्य से दूर हटना है। सत्य एक है, धर्म उसी सत्य का दूसरा नाम है! यदि नीतिशास्त्र धर्म के सिद्धांतों के प्रतिकूल है तो वह नीतिशास्त्र नहीं; वरन् अनीतिशास्त्र है। उचित और अनुचित—न्याय और अन्याय—इन सबकी कसौटी धर्म है, धर्म के अंतर्गत सारा विश्व है!''

वयोवृद्ध मंत्री चाणक्य ने अपने सामने बैठे हुए नवयुवक योगी कुमारगिरि को इस प्रकार देखा, जिस प्रकार एक दानव अपने सामने खड़े हुए बौने की ओर देखता है। वे मन-ही-मन हंसे—''धर्म की गुरुता को स्वीकार करके उसकी दुहाई देनेवाले योगी, जानते हो धर्म को किसने जन्म दिया है?''

''ईश्वर ने, मनुष्य की अंतरात्मा द्वारा!''

"और ईश्वर को?"

लोग चाणक्य के इस प्रश्न से चकित हो गए। 'ईश्वर को किसने जन्म दिया?' कितना भयानक प्रश्न था। जनसमुदाय में एक हलका-सा कोलाहल विकसित हो उठा। कुमारगिरि ने उसी प्रकार शांत भाव से उत्तर दिया—"ईश्वर अनादि है!"

"ठीक कहते हो योगी, ईश्वर अनादि है। यह बात नई नहीं है, प्रत्येक मनुष्य कहता है कि ईश्वर अनादि है, पर क्या तुम ईश्वर को जानते हो? क्या यहां बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति ईश्वर को जानता है?" चाणक्य का स्वर गंभीर था और उनके नेत्रों में ज्योति थी। बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किए ही चाणक्य ने और कहा—"हां, ईश्वर अनादि है, पर उस ईश्वर को, मैं दावे के साथ कहता हूं, कोई नहीं जानता—वह कल्पना से परे है। वह सत्य है; पर इतना प्रकाशवान कि मनुष्य के नेत्र उसके आगे नहीं खुले रह सकते। उस सत्य को जानने का प्रयत्न करो, उस ईश्वर को पाने के लिए घोर तपस्या करो; पर सब व्यर्थ है—निष्फल है। यदि तुम ईश्वर को ही जान सको, यदि तुम्हारी कल्पना में ही वह अखंड और निःसीम अनंत का रचयिता आ सके, तो फिर वह ईश्वर कैसा? पर योगी, हमारा और तुम्हारा ईश्वर, जिसकी हम पूजा करते हैं, उस ईश्वर से भिन्न है। हमारा और तुम्हारा ईश्वर कल्पनाजनित ईश्वर है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही समाज ने उस ईश्वर को जन्म दिया है।"

चाणक्य ने रुककर अपने चारों ओर देखा, गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। योगी कुमारगिरि के नेत्र बंद थे, मानो वह किसी गहरे विचार में मग्न था। चाणक्य आसन से उठ खड़े हुए, खड़े होकर उन्होंने सभा-मंडल में अपने चारों ओर देखा। उनकी उस दृष्टि में गर्व था और अपने ऊपर विश्वास। उनकी आंखें सभा-मंडल में बैठे हुए अखंड विद्वानों को चुनौती दे रही थीं कि उनमें से कोई भी व्यक्ति उनका लोहा ले। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद चाणक्य ने फिर कहा—"अभी बात अधूरी है। हां, मैंने यह कहा था कि हमारा और तुम्हारा ईश्वर, जिसकी हम पूजा करते हैं, कल्पनाजनित चीज है और समाज द्वारा निर्मित है। उसके, भिन्न-भिन्न रूप हैं। अब आती है अंतरात्मा की बात, यहां भी निर्धारित मत अधिक अंश में भ्रमात्मक है। अंतरात्मा ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं है, वरन् समाज द्वारा निर्मित है। यदि वास्तव में वह ईश्वर प्रदत्त होती, तो भिन्न-भिन्न समाज के व्यक्तियों की अंतरात्माएं भिन्न-भिन्न न होतीं। ईश्वर एक है, यदि वास्तव में उसने धर्म के नियम बनाए हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति पर एक ही नियम लागू होता है। पर बात ऐसी नहीं है। एक समाज के व्यक्ति की अंतरात्मा प्रायः दूसरे समाज के व्यक्ति की अंतरात्मा के अनुसार नहीं होती। मनुष्य की

अंतरात्मा केवल उसी बात को अनुचित समझती है, जिसको समाज अनुचित समझता है। इसलिए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंतरात्मा समाज द्वारा निर्मित है। मनुष्य के हृदय में समाज के नियमों के प्रति अंधविश्वास और पूर्ण श्रद्धा को ही अंतरात्मा कहते हैं। समाज से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है!''

चाणक्य आसन पर बैठ गए। विद्वानों में बहुतों ने चाणक्य के अकाट्य तर्कों से प्रभावित होकर उनके आगे मस्तक नमा दिया।

कुमारगिरि ने चाणक्य के ये वाक्य सुने या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता; वह अपने विचारों में उस समय भी तल्लीन था। उसके नेत्र बंद थे और उसके शांत मुख पर एक अलौकिक तेज था; पर विजय उस समय चाणक्य की ही रही। कुमारगिरि लोगों के मतानुसार चाणक्य के अकाट्य तर्कों का कोई उत्तर न दे सके। चन्द्रगुप्त मुसकरा रहे थे। थोड़ी देर तक और प्रतीक्षा करने के बाद उसने अपने सहचर की ओर संकेत किया। उसने उसी समय उठकर कहा— ''वाद-विवाद का अंत हो गया, अब नृत्य आरंभ होगा।''— निस्तब्धता भंग हो गई; उपस्थित सामंतों ने हर्ष-ध्वनि की।

शृंगार-गृह से उसी समय चित्रलेखा ने सभा-मंडल में प्रवेश किया। आभूषणों की झंकार में एक प्रकार का विचित्र संगीत था। धर्म का नीरस तथा शुष्क वायुमंडल राग से भरे सौंदर्य की मस्ती से विकंपित हो उठा; कांपती हुई उषा के धुंधलेपन को चीरते हुए मानो प्रातःकालीन सूर्य के अरुण प्रकाश ने प्रवेश किया। हेमंत के शीतल तथा शुष्क वायु में मधुमास के हल्के ताप और मतवाले सौरभ का समावेश हुआ। सारा वातावरण ही बदल गया।

प्रांगण के बीचोबीच खड़ी होकर चित्रलेखा ने सबसे प्रथम सम्राट् चंद्रगुप्त को अभिवादन किया। उस समय उसके सौंदर्य में अभूतपूर्व आकर्षण था। उसका मुख पूर्णिमा के चंद्रमा की भांति था और उसकी लहराती हुई वेणी नाग की भांति थी, जो विष से त्रस्त होकर चंद्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो। उसकी वेणी में गुंथे हुए मुक्ता-जाल इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो चन्द्रमा को संकट में देखकर तारकावलि पंक्ति में बंधकर काले नाग से भिड़ गई थी। उसके शरीर पर महीन रेशम का दुपट्टा पड़ा हुआ था, जिसका होना अथवा न होना दोनों ही बराबर थे। उसके नीचे उसकी महीन जरी से कढ़ी हुई रेशम की चोली थी, जिससे उसके सुडौल उरोजों की आभा फूट निकलती थी। स्वर्ण-तारों का लहंगा वह पहने हुए थी, जो रात्रि के उज्ज्वल प्रकाश में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा था। रत्नजटित आभूषणों से वह लदी थी। उस समय वह साक्षात् लक्ष्मी-रूप में थी। महाराज को अभिवादन करने के बाद

चित्रलेखा ने उपस्थित सामंतों की ओर अपनी हंसती हुई दृष्टि डाली, सामंतों का उल्लास सभा-मंडल में प्रतिध्वनित हो उठा। प्रत्येक उपस्थित सामंत को उसकी दृष्टि कृतज्ञ करने के बाद बीजगुप्त पर रुक गई। इस बार उसकी आंखों की मुसकराहट उसके मुख पर भी दौड़ गई। बीजगुप्त मुसकराया, चित्रलेखा के मौन अभिवादन का मौन उत्तर मिल गया। चित्रलेखा ने अब विद्वन्मंडली के सामने अपना मस्तक नमाया। जिस समय वह अपनी दृष्टि उस ओर से हटा रही थी, उसने कुमारगिरि को देखा और उसकी दृष्टि उस नवयुवक योगी पर रुक गई। थोड़ी देर तक उसकी दृष्टि कुमारगिरि पर इस प्रतीक्षा में रुकी रही कि वह उसकी ओर देखे; पर ध्यानावस्थित योगी उस समय किसी दूसरे संसार में था। निराश होकर चित्रलेखा ने उधर से आंखें हटा लीं।

सारंगी ने मृदंग के गंभीर ताल के साथ कल्याण के स्वर भरे; वह हल्का-सा हर्ष से पूरित जनरव, जो चित्रलेखा के प्रवेश के साथ ही आरंभ हुआ था, एक क्षण में शांत हो गया। चित्रलेखा के सुंदर कमल-से कोमल पैरों ने घुंघरुओं के साथ सम पर ताल दिया और नृत्य आरंभ हो गया। चित्रलेखा जिस स्थल पर जाती थी, विद्युत् की भांति चमक उठती थी। मृदंग का ताल मानो मेघों का गंभीर गर्जन था। चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति मंत्रमुग्ध-सा कला के सर्वोच्च प्रदर्शन को निरख रहा था।

एकाएक कुमारगिरि ने अपने नेत्र खोले। उनके नेत्रों से उस समय एक प्रकार की दैवी ज्योति देदीप्यमान हो रही थी। वे उठ खड़े हुए, उठकर उन्होंने गंभीरतापूर्वक कहा – "मंत्री चाणक्य! मैं ईश्वर को जानता हूं; और तुम्हें तथा सारी सभा को संतुष्ट करने के लिए इसी स्थल पर ईश्वर को दिखला भी सकता हूं।"

सभा का सन्नाटा भंग हो गया। कुछ लोगों ने कुमारगिरि के ये वाक्य सुने और कुछ ने नहीं, न सुननेवालों में अधिकतर नवयुवक सामंतगण थे, जो नृत्य देखने में व्यस्त थे। उन्होंने चिल्लाकर कहा – "उस योगी को बिठला दो!"

चित्रलेखा ने भी योगी के वाक्य नहीं सुने। वह उस समय नृत्य में व्यस्त थी। उसके पैरों में अजीब जादू था, कला का अभूतपूर्व कौशल था। महाराज चंद्रगुप्त ने चाणक्य की ओर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली, और चाणक्य ने सम्राट् की ओर। योगी कुमारगिरि एक बहुत बड़ी बात करने पर तत्पर थे, चाणक्य ने उठकर कहा – "सामंतगण तथा विद्वानो! योगी कुमारगिरि का दावा है कि वे ईश्वर को जानते हैं और इसी स्थल पर, इसी समय सब लोगों को ईश्वर का दर्शन भी करा सकते हैं; महाराज सहमत हैं,

अतः थोड़ी देर के लिए नृत्य को स्थगित करा देना ही उचित है।''

इस बार सामंतों ने यह सुना और साथ ही चित्रलेखा ने। चित्रलेखा ने रुककर क्रोधभरे नेत्रों से चाणक्य की ओर देखा और उससे दुगुने क्रोध के साथ कुमारगिरि की ओर। इसके बाद वह चुपके से एक कोने में जाकर बैठ गई। चाणक्य ने उठकर कहा – ''योगी कुमारगिरि, हम सब ईश्वर को देखने के लिए प्रस्तुत हैं।''

कुमारगिरि ने अपना आसन छोड़ दिया। उनके उठने के साथ सभा-मंडल में घोर निस्तब्धता छा गई। उठकर वे सभा-मंडल के बीचोबीच खड़े हो गए। कुछ देर के लिए उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिए, इसके बाद उन्होंने कहा – ''उपस्थित पंडितो और सामंतो, मेरी ओर देखो!"

लोगों ने देखा कि योगी कुमारगिरि जहां खड़े थे, उसी के पास यज्ञवेदी से एक अग्नि-शिखा निकली और वह शिखा छत की ओर बढ़ने लगी। उस अग्नि-शिखा का प्रकाश ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के प्रकाश से कहीं अधिक तीव्र था। छत पर पहुंचकर वह उसको भेद गई और आकाश की ओर बढ़ी। धीरे-धीरे वह पतली-सी अग्नि-शिखा आकार में बढ़ने लगी और उसका प्रकाश इतना तीव्र हो गया कि लोगों के नेत्र उस प्रकाश को न सहन कर सकने के कारण बंद होने लगे; पर आश्चर्य की बात यह थी कि उस अग्नि-शिखा में ताप न था, केवल प्रकाश था। कुमारगिरि ने कहा– ''यह सत्य है।''

चाणक्य चिल्ला उठे – ''योगी, तुम झूठ बोलते हो। वहां तो कुछ नहीं है।''

इस बार लोगों ने चाणक्य की ओर आश्चर्य से देखा। योगी कुमारगिरि ने कहा – ''क्या वयोवृद्ध मंत्री सत्य के प्रकाश को नहीं देख सकते?''

चाणक्य ने फिर कहा– ''कैसा प्रकाश? वहां तो कुछ नहीं है?''

कुमारगिरि ने चाणक्य को कोई उत्तर न दिया। उन्होंने फिर कहा– ''और देखो!"

इस बार वह अग्नि-शिखा धुंधली होने लगी और अग्नि-पुंज में परिणत हो गई। उस अग्नि-पुंज में लोगों ने अनेक प्राणी देखे, जो उसी में एक ओर से निकलते और दूसरी ओर से लोप हो जाते थे। उसी अग्नि-पुंज में लोगों ने विशाल नगर बनते और नष्ट होते देखे। उन्होंने उसमें पृथ्वी, जल, वायु तथा आकाश देखे। धीरे-धीरे वह सब लोप हो गया और वही अग्नि-पुंज रह गया।

योगी कुमारगिरि ने कहा– ''और यह ईश्वर है!"

चाणक्य इस बार पागल की भांति चिल्ला उठे– ''मुझे कुछ नहीं दिखलाई देता! योगी, मैं फिर कहता हूं कि तुम झूठ बोलते हो।''

कुमारगिरि ने आंखें बंद कर लीं – सब कुछ लोप हो गया। आंखें खोलकर उन्होंने हंसते हुए कहा – "मंत्री! मैं यह कहूंगा कि तुम झूठ बोलते हो। और मेरे इस कथन की साक्षी सारी सभा है। यहां पर उपस्थित सज्जन तुम्हें इसका उत्तर देंगे।"

लोग चिल्ला उठे– "मंत्री झूठ बोलते हैं, क्योंकि हमने सत्य और ईश्वर दोनों को देखा है।"

मर्माहत चाणक्य ने इस बार चन्द्रगुप्त की ओर देखा। सम्राट् ने भी कहा – "मंत्री! कुमारगिरि झूठ नहीं बोलते। हमने सत्य और ईश्वर को देखा है।"

"मेरी आंखों ने आज प्रथम बार मुझको धोखा दिया है। नवयुवक योगी! मैं हारा और तुम जीते।"– इतना कहकर चाणक्य बैठ गए।

योगी कुमारगिरि ने चलने को पैर उठाए ही थे कि उन्हें नर्तकी चित्रलेखा के शब्द सुनाई दिए – "योगी! ठहरो! मेरे भ्रम का निवारण अभी नहीं हुआ।"

लोगों की आंखें चित्रलेखा की ओर घूम पड़ीं। जनसमुदाय का कौतूहल बढ़ गया। योगी कुमारगिरि को रुक जाना पड़ा। आगे बढ़कर चित्रलेखा ने कहा – "योगी; तुमने जो कुछ दिखलाया था, वह मैंने नहीं देखा। मंत्री चाणक्य को सब लोग झूठा ठहरा सकते हैं, पर मैं नहीं। मैं तुमसे सत्य तथा ईश्वर की दुहाई देकर पूछती हूं कि क्या वास्तव में तुमने भी सत्य और ईश्वर के उस स्वरूप को देखा है, जिसको तुमने सारी सभा को दिखलाया है?"

नर्तकी की आंखें योगी की आंखों से मिल गईं। योगी की आंखों में विश्वास का तेज था और तपस्या का बल; और नर्तकी की आंखों में उल्लास की चमक और अविश्वास की आभा थी। कुमारगिरि के मुख से अचानक ही निकल पड़ा–"नहीं!"

लोग चौंक उठे। मंत्री चाणक्य आह्लाद से विह्वल होकर उठ खड़े हुए; पर चित्रलेखा ने उस ओर ध्यान नहीं दिया–"योगी! क्या यह ठीक है कि तुमने अपनी आत्मशक्ति से सारे जनमंडल को प्रभावित करके अपनी कल्पना द्वारा निर्मित सत्य तथा ईश्वर का रूप दिखलाया है? झूठ मत बोलना, मैं सत्य तथा ईश्वर की दुहाई देकर तुमसे यह प्रश्न पूछ रही हूं–और यह भी याद रखना; तुम योगी हो!"

कुमारगिरि ने कुछ सोचकर उत्तर दिया–"ठीक कहती हो!"

यह प्रश्नोत्तर सुनकर लोग स्तब्ध रह गए। चित्रलेखा ने फिर पूछा–"एक और प्रश्न है। क्या यह भी ठीक है कि जिन लोगों की आत्मशक्ति इतनी प्रबल है कि वे तुम्हारी आत्मशक्ति से प्रभावित नहीं हो

सके, उन लोगों को तुम अपनी कल्पनाजनित चीजें नहीं दिखला सके?"

सभा में विचित्र हलचल मच गई। योगी कुमारगिरि को अपनी स्थिति का आभास हो गया। कुछ देर तक सोचकर उन्होंने उसी तरह शांत भाव से उत्तर दिया—"जो ईश्वर पर विश्वास करता है, उसी में आत्मशक्ति है; नास्तिक में आत्मशक्ति नहीं होती—यदि मनुष्य में कल्पना विद्यमान है, तो वह कल्पना अवश्य प्रभावित होगी; पर जहां कल्पना मर चुकी है, नास्तिकता का काला आवरण जहां कल्पना का दम घोंट चुका है, वहां मनुष्य के लिए ईश्वर को जान सकना असंभव हो जाता है। जिन लोगों ने इस समय सत्य और ईश्वर को नहीं देखा है, उनकी कल्पनाएं मर चुकी हैं—वे नास्तिक हैं और नास्तिक में आत्मशक्ति का होना असंभव है।"

चाणक्य ने सम्राट् की ओर देखा, और सम्राट् ने चाणक्य को कुछ संकेत किया। उसके बाद चाणक्य ने बढ़कर विजय का मुकुट चित्रलेखा के मस्तक पर रख दिया—"नर्तनी चित्रलेखा! आज की विजय तुम्हारी रही; तुमने सत्य के उस रूप को, जिसको आत्मशक्ति के दुरुपयोग द्वारा भ्रम के आवरण में छिपाने का प्रयत्न योगी कुमारगिरि ने किया था, हम लोगों को दिखला दिया।"—फिर उन्होंने कुमारगिरि से कहा—"और योगी, तुमने अनुचित किया। तुम्हें इसका दंड मिलना चाहिए; परंतु तुम्हें दंड देने का अधिकार चित्रलेखा को होगा।"

कुमारगिरि के नेत्र क्रोध से लाल हो गए—"इस सभा में कोई भी व्यक्ति मुझे पराजित नहीं कर सकता और न मुझको दंड देने का कोई व्यक्ति साहस ही कर सकता है।"—इतना कहकर योगी कुमारगिरि तनकर खड़े हो गए।

योगी का रौद्र वेश देखकर सारी सभा कांप उठी; पर चित्रलेखा हंस पड़ी। मुस्कराते हुए वह योगी की ओर बढ़ी—सभा-मंडल में एक हल्का-सा कौतूहल उठ पड़ा। बढ़ते समय चित्रलेखा ने सारंगीवालों को कुछ संकेत किया। कुमारगिरि के पास पहुंचकर वह रुकी—"योगी! तुम्हें दंड देने का अधिकार मुझको सौंपा गया है और मैं तुमको दंड देने पर तुली हुई हूं। मेरा दंड देने का साहस देखो।"—इतना कहकर उसने सोने का विजय-मुकुट कुमारगिरि के मस्तक पर रख दिया।

उसी समय सारंगी में ईमन की गत बजी और चित्रलेखा बिजली की भांति सम पर चमक उठी। नृत्य आरंभ हो गया।—लोगों ने हर्ष-ध्वनि की।

कुमारगिरि अवाक् खड़ा रह गया। चित्रलेखा के दूर चले जाने पर, उसे होश आया, उस समय सारी सभा हर्ष-ध्वनि कर रही थी।—"दंड और पराजय! इन पर विचार करना होगा।"—योगी कुमारगिरि कह उठा। और तेजी के साथ वह सभा-मंडल के बाहर चला गया।

छठा परिच्छेद

अपमानित और पराजित योगी को नया अनुभव हुआ। उस अनुभव की तीव्रता से वह निस्तेज हो गया। उसने कभी कल्पना तक न की थी कि वह पराजित हो सकता है, और फिर पराजित होना एक स्त्री से! और यह स्त्री भी कौन? एक साधारण-सी नर्तकी! कुमारगिरि के हृदय में एक हलचल उत्पन्न हो गई। उसने परिस्थितियों का विश्लेषण किया। विजयी होकर भी वह पराजित हो गया। उसने विजय पाई थी, महाराज चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य के चुने-चुने विद्वानों पर। वह पराजित हुआ था अंधकार से। और अंधकार से पराजित होना तो स्वाभाविक ही है। स्त्री से तो बड़े-बड़े साधक पराजित हुए हैं; पर वे सब स्त्री के क्षेत्र में पराजित हुए थे, ज्ञान में नहीं! कुमारगिरि की परिस्थिति विचित्र थी।

विजय और पराजय! दोनों स्वाभाविक हैं; पर यह पराजय भी विचित्र थी। स्त्री ने अपने ज्ञान से कुमारगिरि को शायद पराजित नहीं किया था, उसने कुमारगिरि को पराजित किया था अपनी उदारता से। सोने का विजय-मुकुट कुमारगिरि के मस्तक को अब भी सुशोभित कर रहा था, कुमारगिरि को उस मुकुट की याद हो आई। कुमारगिरि को क्रोध हुआ, उसने मुकुट अपने सिर से उतार कर पृथ्वी पर पटक दिया। इसके बाद उसने फिर सोचना आरंभ किया—"पराजय!" यह शब्द उसके क्षेत्र में न था। विजय के लिए उसने सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे दी थी; विजय के लिए ही उसने गहरी तपस्या की थी; फिर भला पराजय क्यों? कुमारगिरि उठ खड़ा हुआ—"नहीं, पराजय असंभव है! मैं पराजित हो ही नहीं सकता। क्या मेरी साधना का अंत पराजय होगा? कभी नहीं, कभी नहीं!"

कुमारगिरि की आंखें धूल में पड़े हुए स्वर्ण-मुकुट पर पड़ीं। कुछ देर तक अविचलित भाव से उसने मुकुट की ओर देखा; उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मुकुट कह रहा था—"योगी! तुम पराजित नहीं हुए। तुम विजयी हो।" योगी के शरीर में एक प्रकार का कंपन-सा दौड़ गया। कुमारगिरि धीरे-धीरे उस मुकुट की ओर बढ़ा, उसके पास पहुंचकर वह रुक गया—"विजययुक्त पराजय! कितनी विचित्र समस्या है! क्या मुझको इस विजय-उपहार पर कोई अधिकार है! सारी सभा की दृष्टि में मैं उस स्त्री से पराजित हुआ हूं, यह मुकुट उस स्त्री को पहना दिया गया था। यह मुकुट जूठन है!"—कुमारगिरि ने अपना मुख फेर लिया। उसने वहां से चले जाने का प्रयत्न किया; पर उसके पैर न उठे। मुकुट वहां पड़ा हुआ था, चांदनी का उज्ज्वल तथा श्वेत प्रकाश उसकी शोभा को सहस्र गुना बढ़ा रहा था।

कुमारगिरि ने मुकुट की ओर फिर देखा—''पर मुझको यह मुकुट कैसे मिला? जिसको सारी सभा विजयी समझती है, यदि वही अपने को मुझसे पराजित समझे, तो फिर विजय किसकी? मेरी। नर्तकी! तुमने मुझसे पराजय स्वीकार की—यह क्यों?''

''इसलिए कि मैं तुमसे पराजित हुई!''

योगी चौंक उठा। सामने चित्रलेखा खड़ी थी, उसके मुख पर मधुर मुसकान किलोल कर रही थी, उसकी आंखें हंस रही थीं—''विचित्र बात है योगी कि पराजित प्रफुल्लित है और विजयी व्यग्र है!''

कुमारगिरि ने कुछ कहा नहीं, वह मुकुट की ओर देख रहा था।

''यह क्या? विजय-मुकुट धूल में पड़ा है। योगी, क्या तुम्हें अपनी विजय स्वीकार नहीं है?''—चित्रलेखा की मुसकराहट लोप हो गई थी।

बड़ा कठिन प्रश्न था। आत्माभिमानी योगी के लिए अपनी पराजय स्वीकार करना असंभव था। फिर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

चित्रलेखा ने मुकुट उठा लिया।—''उद्धत योगी! तुम्हें पराजित करना मेरे लिए असंभव है, इतना विश्वास रक्खो।''—उसने मुकुट कुमारगिरि के मस्तक पर रख दिया। जिस मुकुट को वह फेंक चुका था उसको फिर से पहिनते हुए कुमारगिरि हिचका नहीं, उसने इसका विरोध तक न किया। इस समय कुमारगिरि ने नेत्र बंद कर लिए थे, वह कुछ सोच रहा था।

''योगी! क्या सोच रहे हो?''

इस बार कुमारगिरि ने अपने नेत्र खोले—''नर्तकी चित्रलेखा! तुम समझती हो कि तुमने मुझे पराजित किया है, इसलिए तुम बार-बार मेरा अपमान कर रही हो; पर तुम्हारी यह चेष्टा तथा धारणा व्यर्थ है। योगी संसार छोड़ चुका है, मानापमान से उसका कोई संबंध नहीं रह गया। फिर तुम यह सब व्यर्थ कर रही हो!''

चित्रलेखा ने शांत भाव से उत्तर दिया—''योगी! तुम्हारी यह धारणा अनुचित है! मैं फिर कहती हूं कि तुम्हें पराजित करने की न तो मुझमें क्षमता है और न शक्ति है!''

कुमारगिरि ने चित्रलेखा पर अपनी आंखें गड़ा दीं। कुछ क्षणों के लिए उसने अपने सामने खड़ी हुई विचित्र स्त्री—चित्रलेखा को अनिमेष दृगों से देखा, उसका पीला मुख एकाएक लाल हो गया। उसका निश्चल तथा स्थिर शरीर एकाएक सिहर उठा। उसने चित्रलेखा का कोमल हाथ जोर से पकड़कर कहा—''नर्तकी! सच कहना कि फिर तुम यहां छाया की भांति क्यों चली आई हो? इस प्रकार यहां भी मुझको लज्जित करने में तुम्हारा क्या ध्येय है?''

आवेश में कुमारगिरि का सारा शरीर कांप रहा था। चित्रलेखा बिल्कुल

मिली खड़ी थी, उसके नेत्र कुमारगिरि के नेत्रों से मिले हुए थे, चित्रलेखा के अलसाए-से नेत्रों में न जाने कहां की मदिरा थी। मुसकराते हुए उसने उत्तर दिया—"मैं आई हूं, अपने ऊपर विजय पानेवाले से दीक्षित होने के लिए।"

सौरभ से भरा मधुमास था, कंपन से भरा मलय था, चांदनी हंस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी। निर्जन प्रदेश में और रात्रि के गहरे सन्नाटे में योगी कुमारगिरि के सामने नर्तकी चित्रलेखा खड़ी थी।

कुमारगिरि का आवेश लोप हो गया। वह सहमकर कुछ पीछे हट गया, दबी हुई जबान से उसने कहा—"सुंदरी! मुझसे दीक्षित होने के अर्थ पर भी कभी तुमने विचार किया है?"

चित्रलेखा हंस पड़ी। उसकी हंसी का माधुर्य विचित्र था, उसमें सजीव सौंदर्य से भरा संगीत था—"हां, एक बार नहीं, अनेक बार!"

कुमारगिरि ने असाधारण सुंदरी चित्रलेखा से अपनी आंखें हटा लीं।—"नहीं! तुम मेरा प्रयोजन नहीं समझीं। मेरी दीक्षा के अर्थ हैं संसार के समस्त भोग-विलास तथा वासनाओं को सदा के लिए तिलांजलि दे देना। जिस अकर्मण्यता से तुम घृणा करती हो, उसी अकर्मण्यता को अपनाना; जिस शुष्क साधना की तुम हंसी उड़ाती हो, उसी शुष्क साधना में अपने कोमल शरीर को तपाना।"

चित्रलेखा मौन थी। वह यह सोच रही थी कि वह क्या उत्तर दे। नर्तकी होते हुए भी, दर्शन के विकृत सिद्धांतों की दासी होते हुए भी चित्रलेखा को झूठ बोलने का अभ्यास न था। उसकी आत्मा का उत्तर था—'नहीं', उसके हृदय की प्रेरणा थी 'हां'; हृदय ने विजय पाई, उसने चित्रलेखा को जीवन का सबसे बड़ा झूठ बोलने को बाध्य किया—"योगी! इस सबके लिए तैयार होकर आई हूं।"

"इसके लिए तैयार होकर आई हो?"—कुमारगिरि निष्प्रभ हो गया—"सुंदरी, तुम भूल कर रही हो। जो कुछ तुम करने के लिए प्रस्तुत हो, वह बड़ा कठिन काम है। प्रत्येक व्यक्ति यह नहीं कर सकता। जानती हो, ममत्व का विस्मरण बड़ा दुःसाध्य कार्य है। तुम इसे न कर सकोगी!"

चित्रलेखा गंभीर हो गई—"ठीक कहते हो योगी, यह कठिन अवश्य है; पर असंभव नहीं है।"

योगी कुमारगिरि ने एक बार सिर से पैर तक चित्रलेखा को देखा। चित्रलेखा के वस्त्र शरीर पर वही थे, जो वह नृत्य के समय पहने हुए थी, वही सौंदर्य और वही मादकता। चित्रलेखा की आंखों में आकर्षण था और उल्लास था। कुमारगिरि ने मन-ही-मन कहा—"यह स्त्री असाधारण सुंदरी है!"—आज तक कुमारगिरि ने सौंदर्य की ओर ध्यान न दिया था, प्रेम और वासना का क्षेत्र उसके लिए न था। उस सौंदर्य से योगी के हृदय में एक

हल्का-सा कंपन हुआ। प्रथम बार योगी ने इस कंपन से युक्त सासारिक सुख का अनुभव किया। वह सुख कितना विचित्र था! उसने कहा—"सुंदरी चित्रलेखा! तुम्हें दीक्षा देना कहां तक उचित है, इस पर विचार करना होगा। मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।"

"अभी तुम कुछ नहीं कह सकते योगी!"—चित्रलेखा ने कुमारगिरि के शब्द दुहराए—"क्यों! क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं, या तुम्हें अपने पर ही विश्वास नहीं है? योगी, यह याद रखना, मुझे दीक्षा देने या न देने का अर्थ तुम्हारे लिए चाहे कुछ भी हो; पर मेरे लिए यह जीवन-मृत्यु की समस्या है, और इस दृष्टि से तुम्हारा बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि किसी के पास जल है और वह व्यक्ति पिपासाकुलित अतिथि को जल देने से इनकार कर उसे प्यास से तड़प-तड़पकर मरते देखता है, तो यह समझ रखना, वह बहुत बड़े पाप का भागी होता है। उसकी आत्मा को सुख मिलना असंभव है।"

इस उत्तर से कुमारगिरि सहम उठे—"सुंदरी! तुमसे सारी बातें स्पष्ट रूप से कह दूं। तुम्हें दीक्षा देने में मुझे इसलिए संकोच होता है कि तुममें दर्शन के विकृत सिद्धांतों ने जड़ जमा रक्खी है। उन सिद्धांतों के साथ तर्क है और उन सिद्धांतों पर विश्वास करनेवाले व्यक्ति में प्रभाव! मैं डरता हूं कि कहीं उन सिद्धांतों को तुमसे निकालने की जगह मैं ही न उनमें फंस जाऊं—नहीं, यह नहीं।" कुमारगिरि रुक गया। अपनी मानसिक दुर्बलता को उसने पहली बार अनुभव किया था, और अनजाने में प्रकट भी कर दिया था। दुर्भाग्यवश उसने इस दुर्बलता को प्रकट किया एक नर्तकी के सामने। कुमारगिरि को अपने ऊपर क्रोध हुआ। उसका शांत मुख उद्विग्नता से लाल हो गया—"सुंदरी, मैंने जो कुछ कहा, उससे कोई प्रयोजन नहीं। अब तुमसे मेरी केवल इतनी प्रार्थना है कि तुम यहां से चली जाओ। मुझे समय दो कि मैं परिस्थितियों पर विचार करूं।"

"बहुत अच्छा योगी! यदि तुम्हें मेरी उपस्थिति से कुछ दुःख होता है, तो मेरा यहां से चला जाना ही उचित होगा। तुम समझते हो कि जो स्त्री तुम्हारे सामने खड़ी है वह अंधकार है, माया है। तुम्हें मेरे विकृत सिद्धांतों से भय होता है; पर यह तुम्हारी धारणा निर्मूल है। जिस समय मैं तुमसे दीक्षा लेने चली थी; उसी समय मैंने अपने विश्वासों को, भावनाओं को तथा संस्कारों को तिलांजलि दे दी थी। और रही स्त्री के अंधकार तथा माया होने की बात, योगी, वहां भी तुम भूलते हो। स्त्री शक्ति है! वह सृष्टि है, यदि उसे संचालित करनेवाला व्यक्ति योग्य है; वह विनाश है, यदि उसे संचालित करनेवाला व्यक्ति अयोग्य है। इसलिए जो मनुष्य स्त्री से भय खाता है, वह या तो अयोग्य है, या कायर है। अयोग्य और कायर दोनों

ही व्यक्ति अपूर्ण हैं।"

चित्रलेखा वहां से चल दी। कुछ दूर जाकर वह रुकी, कुमारगिरि की दृष्टि शून्य में गड़ी हुई थी। चित्रलेखा ने कहा—"हाँ, एक बात कहना मैं भूल गई थी, वह यह कि मैं तुम्हारे यहां कल फिर आऊंगी। तुम्हें विचार करने का यथेष्ट समय दे रही हूं। यदि मुझे दीक्षा देना उचित समझना, तो कल बतला देना। अच्छा, श्रीचरणों को दासी का प्रणाम!"

कुमारगिरि ने चित्रलेखा को जाते देखा—वह एकाएक चौंक उठा। चित्रलेखा के स्वर का संगीत उसके कानों में गूंज रहा था, उसके सौंदर्य की आभा उसकी आंखों के आगे नाच रही थी। वह उस अतृप्त शराबी की भांति चित्रलेखा को देख रहा था, जिसको संज्ञाहीन हो जाने का भय हो और जिसके सामने सुगंधित मदिरा बह-बहकर धूल में मिली जा रही हो। कुमारगिरि के लिए अपने को रोकना असंभव हो गया, उसने चित्रलेखा को पुकारा—"सुंदरी, ठहरो!"

कुमारगिरि की आंखें झुक गईं। उसकी आत्मा ने हृदय की उच्छृंखलता का विरोध तो अवश्य किया, पर हृदय ने यह कहकर—'मुझे इस स्त्री की बातों का उत्तर देकर अपनी स्थिति को स्पष्ट कर देना आवश्यक है!'—आत्मा की भर्त्सना को टाल दिया। चित्रलेखा लौट आई; उसके मुख पर मुसकान थी और हृदय में कंपन था।

"योगी! तुमने शायद अपनी भूल समझ ली। बोलो क्या कहते हो?"

कुमारगिरि ने कोई उत्तर न दिया। वह उस चांदनी में चित्रलेखा के सौंदर्य को निरख रहा था। उसने चित्रलेखा का शृंगार देखा, और शृंगार भार से पुलकित सौंदर्य देखा, उसने मदिरा देखी और मादकता देखी। उसने इच्छा का अनुभव किया, और इच्छा की मनोहरता का भी अनुभव किया। एकाएक उसके हृदय में यह प्रश्न उठा—"स्त्री क्या है, और सौंदर्य क्या है? भगवान् ने इन चीजों की रचना क्यों की है?"—प्रश्न अनुचित था, वर्षों की चिर-संचित विचारधारा ने कहा—'क्या मैं अपने मार्ग से विचलित हो रहा हूं?'—भरपूर प्रयत्न करके उसने एकदम ही इस विचारावलि को दबा दिया।

"सुंदरी, किस भूल की ओर तुमने संकेत किया था? अपनी जान में मैंने कोई भूल ही नहीं की।"

प्रतिवाद करना उचित न था—"देव! क्षमा करना। जिसको मैं गुरु बनाने आई हूं, वह भूल नहीं कर सकता। मैं अपने शब्दों पर क्षमा चाहती हूं।"

"हां, अभी तुमने पूछा था कि मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं, और शायद तुम यह भी पूछो कि मैंने तुमको क्यों बुलाया था। मैं स्वयं ही नहीं

जानता कि मैंने यह सब क्यों किया, निश्चय ही मैंने इस बार एक बड़ी भूल की थी। फिर भी जब मैंने तुमको बुला ही लिया है, तो एक बात कह दूं, वह यह है—मैं तुमको दीक्षा देने में असमर्थ हूं, असमर्थ ही नहीं हूं, वरन् यह काम मेरे लिए असंभव है। तुम्हें दीक्षा देने का अर्थ होगा, शायद तुमसे स्वयं ही दीक्षित होना। और उसके लिए मैं तैयार नहीं।''—कुमारगिरि की आंखें अस्ताचल पर जाते हुए चंद्रमा पर पड़ी थीं।

चित्रलेखा गंभीर थी। उसके मुख पर निराशा का पीलापन था, उसके नेत्रों में करुणा की छाया थी। धीरे से उसने कहा—''देव! तुमने जो भूल की, उसका तुमसे अधिक दुःख मुझको है। क्या करूं? तुम्हारी असमर्थता का मेरे जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, यह मैं अभी ठीक तरह से नहीं कह सकती; पर इतना निश्चय है कि तुमने मेरे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित कर दिया है। अभी तक आशा थी, मैं जा रही थी भविष्य के आधार पर, यह सोचते हुए कि शायद तुम मुझे दीक्षा दे दो; पर अब वह आशा भी लोप हो गई। तुम्हारे मतानुसार मेरा जीवन अंधकारमय है, मैं तुम्हारे प्रकाश को देखना चाहती हूं; 'चाह' पूरी नहीं हो सकती; पर इसके लिए मैं तुम्हें दोष न दूंगी, मैं दोष दूंगी अपने भाग्य को!''— इतना कहकर चित्रलेखा योगी कुमारगिरि के और निकट चली गई।

योगी निस्तब्ध खड़ा था। चित्रलेखा ने उसके हाथ पकड़ लिए। योगी ने एक विचित्र कंपन का अनुभव किया; पर इस कंपन में सुख था, उल्लास था।—''हां! मेरा और तुम्हारा साथ शायद असंभव ही है। मैं स्त्री हूं और तुम पुरुष; मैं नर्तकी हूं और तुम योगी। मेरा क्षेत्र है वासना और तुम्हारा क्षेत्र है साधना। दोनों में प्रतिद्वंद्विता है। तुम मेरे जीवन में बवंडर की भांति आकर निकले जाते हो, ठीक ही है। प्रयत्न करूंगी कि भविष्य में मैं तुमसे न मिल सकूं; पर इसके पहले कि हम दोनों पृथक् हों, योगी, मैं तुम्हारे पैरों की धूल अपने मस्तक पर चढ़ाना चाहती हूं।''—चित्रलेखा कुमारगिरि के पैरों पर गिर पड़ी।

कुमारगिरि का हृदय धड़क रहा था। चित्रलेखा को पैरों पर गिरा हुआ देखकर वह चौंक-सा उठा। उसने चित्रलेखा को उठा लिया। ऐसा करने में योगी के हाथ चित्रलेखा के उरोजों से स्पर्श कर गए। चित्रलेखा आनंद से पुलकित हो उठी। योगी के लिए इस स्पर्श का कोई महत्व न था, साधारण रूप से अनजाने उससे ऐसा हो गया था, विचारधारा दूसरी ओर केंद्रीभूत होने के कारण उसने इस पर ध्यान न दिया था; पर चित्रलेखा इसका कुछ दूसरा ही अर्थ समझी।

''तुम मेरे चरण क्यों छू रही हो सुंदरी?''

चित्रलेखा कुमारगिरि से मिली हुई खड़ी थी। उसने अपना मुख

कुमारगिरि के मुख के पास ले जाकर कहा—"तुम मेरे आराध्य देव हो।"

कुमारगिरि की आंखें चित्रलेखा की आंखों से मिल गईं। चित्रलेखा की आंखों की मादकता का प्रभाव कुमारगिरि की आंखों पर भी पड़ रहा था। चित्रलेखा ने अपना मुख थोड़ा-सा और बढ़ाया। कुमारगिरि ने अपना मुख हटाया नहीं, उसकी भी श्वास गरम हो गई थी। उसका सारा शरीर कांपने लगा था।

इसी समय कुमारगिरि को सुनाई पड़ा—"गुरुदेव!"

कुमारगिरि चौंक उठा। वह इस प्रकार से चित्रलेखा के पास से हट गया जिस प्रकार वह मनुष्य चौंककर हटता है, जो सर्पिणी के पास तक उसे बिना देखे हुए पहुंच जाता है और उसी समय जब सर्पिणी उसे डसना चाहती है, कोई दूर पर खड़ा हुआ व्यक्ति उसे सचेत कर देता है। सामने विशालदेव खड़ा था। विशालदेव को देखकर कुमारगिरि लज्जा से मानो धूल में गड़ गया। वह आज पराजित हुआ था नर्तकी से, अपने शिष्य के ही सामने।

और चित्रलेखा को विशालदेव पर क्रोध हुआ। विशालदेव को इस अवसर पर आने का अधिकार न था। वह उस सर्पिणी की भांति फुफकार कर विशालदेव की ओर मुड़ी, जो संयोग के समय मनुष्य के सामने आते ही उस मनुष्य पर टूट पड़ती हो।—"युवा! तुम कौन हो और यहां इस समय क्यों आए?"—चित्रलेखा का स्वर तीव्र हो गया था।

"मैं गुरुदेव का शिष्य हूं और इतनी अधिक रात्रि बीतने पर भी गुरुदेव के न लौटने के कारण मैं उन्हें ढूंढ़ने चला आया था।"

चित्रलेखा ने धीरे से कहा—"हाय रे भाग्य!"—इसके बाद उसने कुमारगिरि से कहा—"अच्छा अब जाती हूं गुरुदेव, पर इतना ध्यान में रखना कि मैं तुमसे दीक्षा लेना चाहती हूं और तुमको मुझे दीक्षा देनी ही होगी।"—चित्रलेखा के मृदुल गंभीर स्वर में आज्ञा देनेवाली स्वामिनी का गुरुत्व था—"मैं जनरव से निकलकर एकांत में आना चाहती हूं, माया को छोड़कर मैं ब्रह्म में लिप्त होना चाहती हूं। तुम्हें समय दे रही हूं गुरुदेव, कि इस प्रश्न पर विचार करो। तुम मनुष्य से ऊपर हो, मुझसे डरने का कोई कारण नहीं, तुमने वासनाओं पर विजय पा ली है नाथ, इसी से मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं। अच्छा, श्रीचरणों को दासी का प्रणाम!"—इतना कहकर चित्रलेखा वहां से चली गई।

कुमारगिरि ने विशालदेव का हाथ जोर से पकड़कर कहा—'तुम मूर्ख हो!'—उस समय चंद्रमा अस्ताचल के नीचे उतर रहा था।

सातवां परिच्छेद

''श्वेतांक!''

''स्वामी!''

''बतला सकते हो तुमने आज क्या देखा!''

''हां! आज योगी कुमारगिरि को स्वामिनी ने पराजित किया है। मुझे कितना हर्ष है।''

''तुम्हें हर्ष है!''—बीजगुप्त हंस पड़ा; पर उसकी हंसी रूखी थी—''तुम्हें हर्ष है कि चित्रलेखा ने कुमारगिरि को पराजित किया, पर श्वेतांक, मुझे दु:ख है। तुम शायद मेरी बात पर आश्चर्य करोगे; पर बात ठीक है। तुम हंस सकते हो, मैं भी शायद हंस सकता हूं; पर मेरी आत्मा रोती है!''

श्वेतांक ने आश्चर्य से पूछा — ''मैं स्वामी का तात्पर्य नहीं समझ सका।''

''नहीं समझ सके? और तुम समझ भी किस प्रकार सकते हो। तुमने अभी संसार नहीं देखा है, तुम अनुभव से रिक्त हो। जिसे तुम चित्रलेखा की विजय समझे हो, वह उसकी बहुत बड़ी पराजय है। चित्रलेखा और कुमारगिरि! कोई भी विजयी नहीं है, दोनों ही पराजित हुए हैं। परिस्थिति का चक्र तेजी के साथ घूम रहा है, उसी के फेरे में ये दोनों प्राणी फंस गए हैं।''

श्वेतांक बीजगुप्त की बात अब भी नहीं समझ सका। उस समय तक रथ बीजगुप्त के द्वार तक पहुंच चुका था। दोनों रथ से उतर पड़े। बीजगुप्त ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर कहा— ''अब तुमसे कुछ बातें करने की इच्छा है। चलो, मेरे साथ तुम्हें कुछ देर तक बैठना पड़ेगा।''

श्वेतांक वास्तव में बीजगुप्त की बात नहीं समझ सका था। स्वामी और सेवक—दोनों अध्ययन-भवन में गए। श्वेतांक को बैठने का आदेश देते हुए बीजगुप्त ने बैठकर कहा — ''श्वेतांक! जानते हो कि कुमारगिरि की पराजय क्यों हुई?''

''नहीं!''

''इसका रहस्य मुझसे सुनो। तुम चित्रलेखा को उतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूं। चित्रलेखा का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा है और प्रभावशाली भी है। कुमारगिरि विद्वान् है और योगी है, वासनाओं से उसका वैर है। और चित्रलेखा विदुषी होते हुए भी साधना की विरोधी है। कुमारगिरि और चित्रलेखा दोनों ही अहंभाव से भरे हुए ममत्व के दास हैं और दोनों ही ममत्व की तुष्टि पर विश्वास करते हैं; पर दोनों के साधन भिन्न हैं और विपरीत हैं। एक ने साधना की शरण ली है, दूसरे ने

आत्म-विश्वास की। पर आज जो कुछ हुआ, उससे दोनों ही व्यक्ति अपने-अपने साधन से विरत हो गए। निकट भविष्य में ही अपनी-अपनी शक्ति खो बैठेंगे।"

बीजगुप्त की बातों ने श्वेतांक के लिए पहेली का रूप धारण कर लिया था। उसने कहा—"स्वामिन्! मैं आपकी विचारधारा की थाह नहीं पा सका।"

बीजगुप्त का स्वर धीमा पड़ गया – "इन बातों को अधिक स्पष्ट करने की न तो मुझमें क्षमता है और न मैं इसको उचित ही समझता हूं। हां, यदि तुम यह जानना ही चाहते हो, तो मेरे बताए हुए मार्ग पर चलो।"

श्वेतांक ने कहा – "स्वामी की आज्ञा भर की देर है।"

बीजगुप्त ने कहा – "आज तुम चित्रलेखा को बधाई देने जाओ और उसके मुखांकित भावों का अध्ययन करो।"

श्वेतांक उसी समय चित्रलेखा के भवन पर पहुंचा। चित्रलेखा के भवन में प्रकाश हो रहा था, बधाई देने के लिए आए हुए सामंत-युवकों की भीड़ द्वार को घेरे खड़ी थी। चित्रलेखा की दासियां उनका स्वागत तथा आतिथ्य-सत्कार कर रही थीं; पर चित्रलेखा न थी। श्वेतांक ने एक दासी से पूछा—"स्वामिनी कहां हैं?"— उसने श्वेतांक को भवन के अंदर ले जाकर एक सुसज्जित कमरे में बिठलाया – "स्वामिनी अभी नहीं लौटीं – आती ही होंगी।"– श्वेतांक प्रतीक्षा करने लगा।

प्रतीक्षा में खड़े हुए निराश सामंतों की भीड़ छंटने लगी। एक के बाद एक करके सब सामंत चले गए, घंटों बीत गए; पर फिर भी चित्रलेखा न आई। श्वेतांक को आश्चर्य हुआ। इस समय चित्रलेखा कहां गई होगी? उसने फिर दासी से पूछा— "स्वामिनी के कब तक लौटने की संभावना है?" उसने उत्तर दिया— "मैं कह नहीं सकती।"

श्वेतांक भी प्रतीक्षा में व्यग्र हो गया था। प्रायः आधी रात बीतने पर आ गई थी; पर चित्रलेखा का पता न था। श्वेतांक के मन में कई बार घर लौटने की इच्छा हुई पर उसके कौतूहल ने उसे ऐसा करने से रोका। उसी समय अर्धरात्रि सूचक घंटा बजा। श्वेतांक उठ खड़ा हुआ। दासी से उसने कहा— "स्वामिनी जब आएं, तो कह देना कि मैं बधाई देने आया था।"— इतना कहकर वह भवन से बाहर निकला। उसी समय चित्रलेखा का रथ उसे आता हुआ दिखाई पड़ा। श्वेतांक रुक गया।

श्वेतांक ने रथ से चित्रलेखा को उतारा। चित्रलेखा श्वेतांक को देखकर मुसकराई – "कहो श्वेतांक! इतनी रात्रि तक तुमने जागने का कष्ट क्यों उठाया?"

"स्वामिनी को बधाई देने के लिए!"— श्वेतांक हंस पड़ा।

चित्रलेखा का हाथ पकड़कर श्वेतांक उसे उसके शृंगार-गृह में ले गया। चित्रलेखा ने कहा– "श्वेतांक! तुम मेरे अतिथि-भवन में बैठकर प्रतीक्षा करो, मैं अभी आती हूं।"

वस्त्र बदलकर चित्रलेखा अतिथि-भवन में आई। उस समय वह केवल एक श्वेत धोती पहिने हुए थी – "हां श्वेतांक! तुम मुझे बधाई देने आए हो! क्यों? किस बात पर?"

"स्वामिनी की विजय पर!"

"मेरी विजय पर!"– चित्रलेखा का मुख जो कुछ क्षण पहले उल्लास से चमक रहा था, बिल्कुल पीला पड़ गया था। यौवन की उमंग में छिपी हुई यह विषाद की झलक श्वेतांक ने प्रथम बार देखी थी – वह इसका अर्थ नहीं समझ सका। सुन्दर मुख का प्रत्येक भाव-परिवर्तन सुन्दर होता है; विषाद का पीलापन लिए हुए वह वेश भी श्वेतांक को बड़ा मोहक लगा, और विशेषतः इसलिए कि उसके पीले मुख पर सहस्रों दीप-शिखाओं का प्रकाश पड़ रहा था – "मेरी विजय पर! श्वेतांक, मैं बधाई की पात्री नहीं हूं; वह मेरी विजय नहीं थी, वह मेरी एक बहुत बड़ी पराजय थी।"

चित्रलेखा ने भी वही बात कही, जो बीजगुप्त ने कही थी। और दोनों ने यह बात गंभीरतापूर्वक कही थी। श्वेतांक को आश्चर्य हुआ।

चित्रलेखा ने श्वेतांक के मुखांकित भाव पढ़ लिए – "तुम्हें मेरी बातों पर आश्चर्य होता होगा; पर आश्चर्य न करने का कोई कारण नहीं है। जानते हो, मैं अभी कहां गई थी?"

"यह प्रश्न मैं भी पूछना चाहता था! पर साहस नहीं पड़ा।"

"तो सुनो। मैं अभी आ रही हूं कुमारगिरि की कुटी से। कुमारगिरि को अपमानित और लांछित करने का न मुझे कोई कारण था और न मुझको कोई अधिकार ही था। मेरा क्षेत्र दूसरा है, विद्वानों के क्षेत्र में पदार्पण करना मेरे लिए अनुचित था। मैंने जो कुछ किया, वह बुरा किया। इस समय मैं उससे क्षमा-प्रार्थना करने गई थी।"

श्वेतांक अवसन्न रह गया। चित्रलेखा का यह कैसा भाव-परिवर्तन था, यह वह समझ न सका। उसने पूछा – "पर जो ठीक है उसको बतला देना प्रत्येक मनुष्य को उचित है। और जो मनुष्य धोखा देकर मनुष्य को भ्रम में डाल रहा हो, उस मनुष्य की वास्तविकता पर प्रकाश डालना कर्तव्य है। देवि! तुमने जो कुछ किया, वह ठीक किया।"

"इसी बात का तो मुझे दुःख है। मैंने जो कुछ किया, उसे सारा संसार ठीक समझता है; पर मैं ठीक नहीं समझती। कुमारगिरि योगी है, और उसमें शक्ति है, उसका सत्य और ईश्वर ये दोनों ही उसकी कल्पना-जनित थे; पर साथ ही मनुष्य में इतनी उत्कृष्ट कल्पना का होना भी असंभव है।

इस कल्पना का स्रोत कहां है? यही प्रश्न है। कुमारगिरि में सृजन की शक्ति है; मैंने जो कुछ किया वह विनाश का काम था। व्यक्तित्व की उत्कृष्टता किसी भी बात को काटने में नहीं होती, उसे सिद्ध करने में होती है; बिगाड़ने में नहीं होती, बनाने में होती है।"

"पर यदि मनुष्य ऐसी इमारत बनाता है, जो उसमें रहनेवाले व्यक्तियों को हानिकारक है, तो उसे नष्ट कर देना क्या उचित नहीं है?"

चित्रलेखा हंस पड़ी। – "तर्क से कोई लाभ नहीं, मैं इतना अनुभव कर रही हूं कि मैंने बुरा किया; पर जो कुछ कर दिया, वह कर दिया, उसका परिणाम भुगतना ही पड़ेगा।"

"परिणाम!"–श्वेतांक के लिए एकदम दूसरी समस्या थी – "कैसा परिणाम देवि?"

"यह तुम्हें निकट भविष्य में मालूम हो जाएगा।" – चित्रलेखा ने दासी को पुकारा।

"अभी मैंने भोजन नहीं किया है। और श्वेतांक संभवतः तुमने भी भोजन नहीं किया है।"

चित्रलेखा ने दासी को दो थालों में भोजन लाने की आज्ञा दी।

दासी चली गई। चित्रलेखा ने मदिरा की सुराही निकाली। स्वयं पीकर उसने श्वेतांक को भी मदिरा दी। श्वेतांक उस समय तक मदिरा पीने का अभ्यस्त हो गया था। उसने भी पात्र खाली कर दिया। चित्रलेखा ने श्वेतांक से कहना प्रारंभ किया – "श्वेतांक मेरा तुम पर स्नेह है, और उस व्यक्ति से कोई बात न छिपानी चाहिए, जिससे स्नेह हो।"

श्वेतांक चित्रलेखा के इस कथन पर न्यौछावर हो गया। श्वेतांक वास्तव में चित्रलेखा को स्वामिनी की भांति मानता था, यद्यपि चित्रलेखा का उसके साथ बर्ताव सदा ममतापूर्ण-सा था। उसने कहा – "देवि! मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं किसी अंश में सहानुभूति में कम नहीं हूं।"

चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर कहा – "श्वेतांक! तुम मेरा भेद किसी पर प्रकट न करोगे?"

"मैं शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं।"

"और मेरी सहायता करोगे?"

"मैं शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं।"

चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ छोड़ दिया – "सुनो! मेरी आज की विजय वास्तव में मेरी विजय न थी, वरन् मेरी पराजय थी। कुमारगिरि ने मेरे जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर दिया है।"

श्वेतांक को उस भयानक सत्य का आभास हुआ, जिसकी ओर बीजगुप्त ने संकेत किया था। अपने अविश्वास को दूर करने के लिए उसने पूछा–

"किस प्रकार ?"

"किस प्रकार ? इतना भी नहीं समझ सके हो ? सुनो, मैं कुमारगिरि से प्रेम करने लग गई हूं। मुझे ऐसा अनुभव होता है मानो मेरा और कुमारगिरि का युग-युगांतर का संबंध है। आज उस सभा में उस योगी ने समस्त भारतवर्ष के अखंड विद्वानों पर विजय पाई, प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रभावित था; पर मैं नहीं। और यह क्यों ? यह केवल इसलिए कि कुमारगिरि को मैं जानती हूं और मुझको कुमारगिरि। हम दोनों जन्म-जन्मांतरों में बराबर साथ रहे हैं।"

श्वेतांक पुनर्जन्म पर विश्वास करता था – उसने चित्रलेखा की बातों का विरोध न किया – "हां, समझा !"

"जिस दिन से मैंने कुमारगिरि को देखा है, उस दिन से मैं उसकी ओर आकर्षित हो रही हूं। उसकी आत्मा की थाह वही ले सकता है, जिसने उसकी आत्मा को अच्छी तरह से समझ लिया हो। मैं उसको अच्छी तरह से जानती हूं और साथ ही उसकी आत्मा को। श्वेतांक ! कुमारगिरि मेरे जीवन का प्रधान अभिनेता है !"

"समझ गया हूं देवि ! पर मैं किस प्रकार सहायता कर सकता हूं ?"

दासी भोजन के दो थाल परसकर ले आई। चित्रलेखा ने श्वेतांक को भोजन करने का आदेश देकर भोजन करना आरंभ कर दिया।

भोजन करने के पश्चात् चित्रलेखा ने कहा – "हां, तुमने पूछा था कि तुम किस प्रकार मेरी सहायता कर सकते हो ! तुम मेरी सहायता केवल इस प्रकार कर सकते हो कि तुम बीजगुप्त पर मेरा भेद प्रकट न करो। बीजगुप्त को मुझ पर अविश्वास होगा; पर तुम्हारा यह काम होगा कि तुम बीजगुप्त के अविश्वास को दूर कर दो !"

श्वेतांक कुछ सोचने लगा। चित्रलेखा ने उससे जो कुछ कहा था, उसको करना श्वेतांक के लिए कठिन था। बीजगुप्त उसका स्वामी था – बीजगुप्त को धोखा देना स्वामी के साथ विश्वासघात करना था; पर साथ ही चित्रलेखा भी उसकी स्वामिनी थी – और साथ-साथ···।

चित्रलेखा ने श्वेतांक के मुखांकित भाव पढ़ लिए। उसने मदिरा का पात्र फिर भरकर श्वेतांक के होठों से लगा दिया। उस समय चित्रलेखा मुसकरा रही थी। श्वेतांक ने पात्र खाली कर दिया। उसी प्रकार मुसकराते हुए चित्रलेखा ने पूछा – "बोलो ! क्या तुम मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करोगे ?"

श्वेतांक मौन ही रहा – हां और नहीं, उसके मुख से कुछ भी न निकला।

चित्रलेखा की मुसकराहट लोप गई – क्रोध की हल्की-सी लाल रेखा उसके पराग-से रंजित कपोलों पर दौड़ गई; उसके कोमल हाथ आवेश में

थिरक उठे। उसने श्वेतांक का हाथ पकड़ लिया – ''श्वेतांक! मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं कि जो कुछ मैंने कहा है, तुम्हें करना पड़ेगा।''

श्वेतांक चित्रलेखा के इस क्रोध के सामने झुक गया। उसने धीरे से कहा – ''जो आज्ञा! स्वीकार है!''

''तुम्हें शपथ लेनी पड़ेगी!''– चित्रलेखा कुछ रुकी – ''नहीं, तुम्हें शपथ लेने की कोई आवश्यकता नहीं। तुमने अपना वचन मुझको दिया है और अपने वचनों की पवित्रता पर तुम्हें ध्यान रहेगा, इतना मुझे विश्वास है!''– इतना कहकर चित्रलेखा ने श्वेतांक के होठों से मदिर का तीसरा प्याला लगा दिया।

श्वेतांक के नेत्र बंद थे। उसने अपूर्व सुख का अनुभव किया। मदिरा पीकर उसने कहा – ''देवि! मैंने सदा तुम्हारी पूजा की है। मेरे जीवन का तुम्हारे जीवन से गहरा संबंध है। तुम मेरी स्वामिनी हो और मैं तुम्हारा दास हूं। तुम्हारा प्रत्येक वाक्य मेरे लिए वेद-वाक्य है, इतना विश्वास रखना। और अपने वचनों की पवित्रता के विषय में मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मैं नीच नहीं हूं।''

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ। चित्रलेखा ने कहा – ''क्या आज मुझे श्वेतांक को पहुंचाने का प्रबंध करना पड़ेगा?''

''नहीं!''– श्वेतांक के नशे में कंपन न था, आत्म-विस्मृति न थी – ''अभी होश में हूं और होश में ही रहूंगा।''– इतना कहकर श्वेतांक वहां से चल दिया।

जिस समय श्वेतांक भवन में लौटा, उसने बीजगुप्त के अध्ययन-भवन में प्रकाश देखा। परिचारिका ने उससे कहा – ''स्वामी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

श्वेतांक ने अध्ययन-गृह में प्रवेश किया। बीजगुप्त उस समय बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। आज तक श्वेतांक ने बीजगुप्त को चिंतित न देखा था। बीजगुप्त के सामने मदिरा का रिक्त पात्र था और चिंता का अथाह सागर था। कल्पना के उद्यान में भय के तप्त वायु का झोंका था; सुख के साम्राज्य में दुःख की क्रांति थी। श्वेतांक को देखकर बीजगुप्त मानो निद्रा में चौंक उठा – ''तुम आ गए। पर बहुत देर लग गई।''

श्वेतांक बैठ गया। सुराही से उंडेलकर उसने शीतल जल से पात्र भरकर एक घूंट में खाली कर दिया।

कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद बीजगुप्त ने फिर कहा–''श्वेतांक, तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हो, क्या कारण है?''

''हां स्वामी, स्वामिनी की प्रतीक्षा में मुझे इतनी देर लग गई।''

''चित्रलेखा की प्रतीक्षा में?''– बीजगुप्त संभलकर बैठ गया – ''क्या

कहा, जिस समय तुम चित्रलेखा के भवन पर पहुंचे, उस समय वह वहां नहीं थी ?''

श्वेतांक झिझका। उसे अपनी प्रतिज्ञा और शपथ का स्मरण हो आया– ''स्वामी का अनुमान ठीक है, चित्रलेखा अपने भवन में न थी।''

बीजगुप्त ने श्वेतांक के वाक्यों में हिचकिचाहट देखी, उसने फिर पूछा– ''तुम्हें शायद उसने यह बताया होगा कि वह कहां गई थी ?''

श्वेतांक के हृदय में तर्क-वितर्क उठ खड़े हुए; पर निर्णय पर पहुंचने के लिए उसके पास यथेष्ट समय न था। उसने बिना किसी हिचकिचाहट के उत्तर दिया – ''स्वामिनी ने तो कुछ नहीं कहा; पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे मंत्री चाणक्य के यहां आमंत्रित थीं।''

बीजगुप्त के हृदय से एक भार-सा हट गया। उसके हृदय में न जाने कैसे यह धारणा उत्पन्न हो गई थी कि चित्रलेखा संभवत: कुमारगिरि के यहां गई थी। श्वेतांक के इस उत्तर से उसका भय दूर हो गया। उसने श्वेतांक से फिर पूछा – ''हां, अब बताओ तुमने चित्रलेखा को बधाई दी थी ?''

''हां !''– श्वेतांक ने धीरे से कहा– ''पर चित्रलेखा ने मुझसे यह कहा कि वह बधाई की पात्र नहीं है। अपनी विजय पर उसे गर्व न था, उसे उस पर सुख भी न था; मुझे इस पर आश्चर्य हुआ। चित्रलेखा को अपनी विजय पर दु:ख था।''

बीजगुप्त मुस्कराया; पर उसकी उस मुस्कराहट में करुणा का अथाह सागर छिपा हुआ था – ''मैंने तुमसे क्या कहा था? चित्रलेखा का अपनी विजय स्वीकार न करना ही इस बात का द्योतक है कि चित्रलेखा की पराजय हुई।''

''स्वामी के अर्थ को कुछ-कुछ समझ सका हूं।''

''कुछ-कुछ समझने के कोई अर्थ नहीं होते। यदि तुम समझ सकते हो तो पूर्णतया, नहीं तो बिल्कुल ही नहीं।''– बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ– ''श्वेतांक, यह याद रखना कि मनुष्य स्वतंत्र विचारवाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। और यह परिस्थिति-चक्र क्या है, पूर्वजन्म के कर्मों के फल का विधान है। मनुष्य की विजय वहीं संभव है, जहां वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे। चित्रलेखा परिस्थितियों के चक्र में पड़ गई है, कुमारगिरि का उसके जीवन में आना उसके लिए घातक है और उसका कुमारगिरि के जीवन में आना कुमारगिरि के लिए घातक है। दुर्भाग्यवश दोनों ही एक-दूसरे के जीवन में बिना जाने हुए अपनी-अपनी साधनाओं को भ्रष्ट करने के लिए आ गए हैं– भगवान् ही उनकी सहायता कर सकता है !''

आठवां परिच्छेद

महासागर के शांत वक्षस्थल पर भयानक झंझावत उठने के पहले एक घोर निस्तब्धता छा जाती है। उस समय वायुमंडल उत्तेजित हो उठता है और सारा वातावरण भावी क्रांति की आशंका से शून्य-सा हो जाता है।

और उसके बाद? वायु के प्रचंड झोंके—लहरों का तांडव-नर्तन तथा विप्लव-गायन।

आकाश के वक्ष पर ज्वालामुखी के फटने के पहले एक घोर दबी हुई अशांति फैल जाती है, उसका नीला रंग धूमिल हो जाता है और विनाश के भय से सारा आकाश-मंडल वायु से रिक्त हो जाता है।

और उसके बाद? अग्नि के शोले—और विनाश।

चित्रलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वार पर रुका—उस समय संध्या हो गई थी। दिन की भयानक गरमी के बाद पाटलिपुत्र की सड़कों पर सामंतों के रथ उमड़ पड़े थे; फूलों के हार लिए हुए मालिन युवतियां सामंतों को हार पहना रही थीं—सुवासित तथा शीतल शर्बत के पात्र धनी युवक तथा युवतियों के होठों का चुंबन कर रहे थे। चारों ओर उल्लास और विलास था।

राजमार्ग उस समय मानो उत्सव का केंद्र हो रहा था। जौहरियों की दुकानों पर युवतियां रंगरेलियां कर रही थीं, और तंबोलियों की दुकानों पर युवक। बीजगुप्त भी उसी जनरव का एक भाग था।

श्वेतांक उस समय बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। उसका रथ बाहर खड़ा था, परिचारिका उसको वस्त्र पहना रही थी। प्रहरी ने आकर सूचना दी—"प्रभु! स्वामिनी का रथ द्वार पर प्रभु की प्रतीक्षा कर रहा है।"

श्वेतांक चौंक उठा। उस समय बीजगुप्त की अनुपस्थिति उसे बुरी लगी; उसने पाप किया था और संभवतः उसे और अधिक पाप करना होगा, जिसके लिए वह तैयार न था। फिर भी श्वेतांक ने उत्तर दिया—"कह दो कि शीघ्र ही आ रहा हूं।"

श्वेतांक बाहर निकला। उस समय वह बहुत सुंदर लग रहा था। श्वेतांक चित्रलेखा के पास गया—"क्या आज्ञा है देवि?"

चित्रलेखा ने स्वाभाविक हंसी के साथ उत्तर दिया—"बीजगुप्त से मिलना था; पर शायद वह घर पर नहीं हैं।"

श्वेतांक ने भी हंसते हुए उत्तर दिया—"स्वामिनी का अनुमान ठीक है।"

"फिर यह सोचा कि तुम्हीं से मिल लूं।"

"देवि ने इस दास पर बड़ा अनुग्रह किया, देवि की सेवा में मैं सदा प्रस्तुत हूं।"

"इसकी कोई आवश्यकता नहीं। आज चित्त उचाट था और यह इच्छा हुई कि जनरव में ही अपने चित्त को कुछ शांत करूं। घूमने का लक्ष्य लेकर निकली थी, यदि बीजगुप्त नहीं मिले, तो कोई चिंता नहीं; तुम तो हो।"

"बहुत अच्छा!"—इतना कहकर श्वेतांक अपने रथ की ओर बढ़ा। पर चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ पकड़ लिया—"नहीं, तुम्हें मेरे साथ इसी रथ पर चलना होगा।"

मंत्र-मुग्ध की भांति श्वेतांक चित्रलेखा के रथ पर बैठ गया; रथ राजमार्ग की ओर चल पड़ा। चित्रलेखा बैठी हुई थी, घोड़ों की बाग श्वेतांक के हाथ में थी। राजमार्ग पर पहुंचते ही घोड़ों की बाग चित्रलेखा ने अपने हाथों में ले ली। अश्व थिरक उठे। गर्व से मस्तक उठाकर वे राजमार्ग में घुसे—उन्हें शायद यह विदित हो गया था कि उनकी बागडोर उस स्त्री के हाथ में है, जो पाटलिपुत्र के बड़े-से-बड़े सामंतों को केवल संकेत पर नचा सकती है। चित्रलेखा के रथ को देखकर बड़े-बड़े सामंतों के रथ रुक जाते थे, लोग उसे अभिवादन करते थे और साथ ही उसकी प्रशंसा। श्वेतांक को उसके साथ बैठे हुए देखकर कुछ लोगों ने व्यंग्य-वाक्य भी कहे; पर चित्रलेखा उस समय केवल हंस दी, उसने उन वाक्यों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

उस समय चित्रलेखा फूलों के हार से लदी हुई थी। प्रत्येक सामंत उसकी ओर एक हार फेंक देता था; चित्रलेखा उसे पहनकर उसको कृतार्थ कर देती थी। रथारूढ़ा चित्रलेखा उस समय साक्षात् शिवा की प्रतिमा थी—लोग उसका सम्मान करते थे, उसके सामने झुक जाते थे और उसकी पूजा करते थे। राजपथ का विशाल जनरव मानो चित्रलेखा का स्वागत कर रहा था।

दूसरी ओर से एक रथ आकर चित्रलेखा के रथ के पास रुका। चित्रलेखा उस समय एक नवयुवक से बातें कर रही थी। रथ खड़ा हुआ था। दूसरे रथ के रुकने के साथ ही चित्रलेखा का ध्यान भंग हुआ—पार्श्व में बीजगुप्त हंस रहा था।

"आज राजमार्ग पर चित्रलेखा को देखकर आश्चर्य होता है।"

"और आज बीजगुप्त को उसके घर में न पाकर आश्चर्य हुआ!"

उत्तर और प्रत्युत्तर—दोनों में गूढ़ रहस्य छिपा था, जिसे दोनों ने समझ लिया। श्वेतांक रथ से उतर पड़ा, बीजगुप्त ने कहा—"चित्रलेखा बीजगुप्त के यहां निमंत्रित है—संभवतः निमंत्रण अस्वीकार न होगा।"

चित्रलेखा ने उत्तर दिया—"चित्रलेखा को बीजगुप्त का निमंत्रण सहर्ष स्वीकार है।"

उस समय संध्या बीत रही थी—राजमार्ग पर प्रकाश होने लगा था। बीजगुप्त अपने रथ से उतरकर चित्रलेखा के रथ पर बैठ गया—घोड़ों की

रास उसने अपने हाथ में ले ली। श्वेतांक ने बीजगुप्त का रथ सम्हाला।

दोनों रथ बीजगुप्त के भवन की ओर मोड़ दिए गए। बीजगुप्त ने कहा—"मुझे दु:ख है कि जिस समय तुम मेरे भवन में गई, उस समय मैं अनुपस्थित था।"

"दु:ख होने की कोई बात नहीं"—चित्रलेखा मुसकराई—"दोष मेरा ही था, क्योंकि मैं ऐसे समय पर पहुंची थी, जब मैं कभी भी तुम्हारे यहां नहीं जाती थी, इसलिए तुम्हारा भवन में न होना अस्वाभाविक नहीं था।"

चित्रलेखा मौन बैठी थी और बीजगुप्त भी मौन था। कुछ देर तक दोनों में कोई बात नहीं हुई, इसके बाद बीजगुप्त ने आरंभ किया—"चित्रलेखा! कई दिनों से चित्त उद्विग्न रहा है। क्यों? यह मैं स्वयं ही नहीं जानता। एक बात पूछूंगा—कई दिनों से तुम मेरे यहां नहीं आई, इसका क्या कारण है?"

चित्रलेखा ने अपना मुख उठाया—"कारण पूछते हो! नहीं आ सकी, क्योंकि आने की इच्छा न थी।"

बीजगुप्त को इस उत्तर की आशा न थी। उसका अनुमान था कि चित्रलेखा कोई कारण बतावेगी; पर इतनी स्पष्ट तथा वास्तविक बात सुनकर उसे आश्चर्य हुआ और कुछ क्रोध हुआ। क्रोध अपने ऊपर तो हुआ ही; पर चित्रलेखा पर भी हुआ—"आने की इच्छा न थी! इसका कारण जानने का मैं अधिकारी हूं।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त के मुख की ओर देखा; उस पर दृढ़ता थी और गंभीरता थी; क्रोध की छाप थी और स्वामित्व की गुरुता थी। चित्रलेखा का मुख लाल हो गया, फिर भी अपने भावों को दबाते हुए कहा—"अधिकारी हो! इतना नहीं जानती थी। मनुष्य पर मनुष्य का क्या अधिकार है, यह मैं नहीं समझ सकी। फिर भी तुम कारण जानना चाहते हो तो सुनो—इन दिनों किसी अंश तक मेरा चित्त उद्विग्न रहा है और उस उद्विग्नता में मैं अपने को और अपनों को भूल-सी गई थी।"

इस समय रथ बीजगुप्त के भवन के द्वार पर रुक गया। श्वेतांक ने अपने रथ से उतरकर बीजगुप्त और चित्रलेखा को उतारा। तीनों बीजगुप्त के केलि-भवन में गए। इसके बाद श्वेतांक वहां से चलने लगा। श्वेतांक को जाते हुए देखकर बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! ठहरो, तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा—"नहीं, श्वेतांक की यहां कोई आवश्यकता नहीं।"

"साथ ही श्वेतांक की उपस्थिति से कोई हानि भी नहीं है।" — बीजगुप्त हंस पड़ा—"वरन् इसमें श्वेतांक का लाभ ही है। इस अनुभवहीन व्यक्ति को संभवत: कुछ अनुभव भी प्राप्त हो।"—श्वेतांक रुक गया, बीजगुप्त ने

उसे मदिरा देने का संकेत किया।

इस काम में श्वेतांक अभ्यस्त हो गया था। मदिरा का पात्र उसने बीजगुप्त को दिया, चित्रलेखा को दिया और स्वयं भी लिया। फिर थोड़ी दूर हटकर श्वेतांक बैठ गया।

बीजगुप्त ने आरंभ किया—''हां! अभी तुमने कहा था कि तुम किसी उद्विग्नता में स्वयं को और अपनों को भूल गई थी; इस विस्मृति को उत्पन्न करनेवाली उद्विग्नता भी विचित्र होगी।''

चित्रलेखा हंसी—''तो क्या मैं यह समझूं कि बीजगुप्त मुझे अपनी मन:प्रवृत्ति का विश्लेषण करने को बाध्य कर रहे हैं ?''

''नहीं, बाध्य नहीं कर रहा हूं, वरन् प्रार्थना कर रहा हूं कि मुझको यह ज्ञात हो जाय।''

''यदि बीजगुप्त यह प्रार्थना कर रहे हैं, तो उनको यह विदित हो कि उद्विग्नता असाधारण है और उस उद्विग्नता का कारण भी असाधारण है! पर साथ ही चित्रलेखा उस उद्विग्नता पर अधिक कहने में असमर्थ है।''

बीजगुप्त ने श्वेतांक की ओर देखा। श्वेतांक मौन-भाव से उस बातचीत को सुन रहा था। ''चित्रलेखा असमर्थ है!''—बीजगुप्त ने धीरे से कहा—''आज हम दोनों के परिचय के बाद पहला अवसर उपस्थित हुआ है, जब चित्रलेखा बीजगुप्त से अपनी बातें छिपा रही हैं। चित्रलेखा का हृदय बदल गया है; इसका बीजगुप्त को कुछ क्षीण आभास हो रहा है।''

मदिरा की गरमी वहां बैठे हुए व्यक्तियों पर अपना प्रभाव जमाने लगी थी। दूसरा प्याला अपने होठों से लगाते हुए चित्रलेखा ने कहा—''इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चीज का बदल जाना अस्वाभाविक नहीं है।''

बीजगुप्त स्तब्ध-सा रह गया। इस उत्तर के लिए वह तैयार न था। ''क्या कहा, इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चीज का बदल जाना अस्वाभाविक नहीं है? तो फिर समझ लूं कि चित्रलेखा का प्रेम बदल सकता है।''

चित्रलेखा ने जो बात कह दी थी, उसके लिए वह स्वयं भी पछता रही थी। बिना सोचे-समझे, परिणाम पर बिना ध्यान दिए हुए, आवेश में आकर उसने यह बात कह दी थी, उसने यह सोचा तक न था कि उस बात पर इतना महत्वपूर्ण प्रश्न हो सकता है। उसने साहस किया—''नहीं, बीजगुप्त का अनुमान मिथ्या है। चित्रलेखा का प्रेम सागर की भांति गंभीर है, उसका बदलना असंभव सा है; पर साथ ही मैं यह मानती हूं और उसको ठीक भी समझती हूं कि प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है, प्रेम उसी प्रकृति का एक भाव है। प्रकृति का नियम प्रेम पर भी लागू हो

सकता है।"

कटु होते हुए भी चित्रलेखा ने जो कुछ कहा, वह किसी अंश तक सत्य था—इसका बीजगुप्त ने अनुभव किया। बात सत्य थी, कहने का अवसर उपयुक्त था; और बात का प्रसंग भी समयोचित था। बीजगुप्त ने अनुभव किया कि चित्रलेखा उससे दूर हटती जा रही है और वह चित्रलेखा से। एक अज्ञात शक्ति अथवा प्रेरणा इन दो प्राणियों के बीच में आ गयी है!

"चित्रलेखा! तुम भूलती हो। प्रेम का संबंध आत्मा से है, प्रकृति से नहीं। जिस वस्तु का प्रकृति से संबंध है, वह वासना है, क्योंकि वासना का संबंध बाह्य से है। वासना का लक्ष्य यह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा करके उसको सुंदर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, आत्मा का नहीं। आत्मा का संबंध अमर है।"

चित्रलेखा हंस पड़ी—"आत्मा का संबंध अमर है! बड़ी विचित्र बात कह रहे हो बीजगुप्त! जो जन्म लेता है वह मरता है; यदि कोई अमर हैं तो अजन्मा भी है। जहां सृष्टि है, वहां प्रलय भी रहेगा। आत्मा अजन्मा है इसलिए अमर है; पर प्रेम अजन्मा नहीं है। किसी व्यक्ति से प्रेम होता है, तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। संबंध होना ही उस संबंध का जन्म लेना है। वह संबंध अनंत नहीं है, कभी-न-कभी उस संबंध का अंत होगा ही। प्रेम और वासना में भेद है, केवल इतना कि वासना पागलपन है, जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है; और प्रेम गंभीर है। उसका अस्तित्व शीघ्र नहीं मिटता। आत्मा का संबंध अनादि नहीं है, बीजगुप्त।"

बीजगुप्त ने देखा कि चित्रलेखा की तर्कना-शक्ति बहुत बढ़ गई है। बीजगुप्त का यह वार भी खाली गया—बीजगुप्त तड़प उठा—"जो कुछ तुम कहती हो वह ठीक हो सकता है! मैं उसका विरोध नहीं करता। यह तो अपना विश्वास है; पर इतना यहां पर कह देना अनुचित न होगा कि उन्माद और ज्ञान में जो भेद है, वही वासना और प्रेम में है। उन्माद अस्थायी होता है और ज्ञान स्थायी। कुछ क्षणों के लिए ज्ञान लोप हो सकता है; पर वह मिटता नहीं। जब पागलपन का प्रहार होता है, ज्ञान लोप होता हुआ विदित होता है; पर उन्माद बीत जाने के बाद ही ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। यदि ज्ञान अमर नहीं है, तो प्रेम भी अमर नहीं है; पर मेरे मत में ज्ञान अमर है—ईश्वर का एक अंश है और साथ ही प्रेम भी।"

चित्रलेखा उस समय लेटी हुई थी, उसकी आंखें अधखुली थीं। उसके सुंदर मुख पर उन्माद अठखेलियां कर रहा था। वह उठ बैठी, उसने कहा—"बीजगुप्त! ठीक कहते हो, मैं भ्रम में थी, भ्रम के आवरण में मैं

अपने को भूल गई थी—क्षमा करना!" इतना कहकर उसने अपने हाथ बीजगुप्त के गले में डाल दिए।

श्वेतांक ने यह देखा—वह उठ खड़ा हुआ। बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! तुम जा सकते हो। रथ अभी मत खुलवाना, आज मेरा निमंत्रण है और तुम्हारा भी।"

नवां परिच्छेद

आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय जन्म से क्षत्री होते हुए भी कर्म से ब्राह्मण थे। पाटलिपुत्र के इस वयोवृद्ध सामंत के भवन में उल्लास-विलास के स्थान में त्याग और विराग का आधिपत्य था। लोग उनकी उपमा विदेह से देते थे, और वे इस उपमा के योग्य भी थे। सारा नगर मृत्युंजय के नाम से परिचित था—बहुत थोड़े-से चुने हुए व्यक्ति उनके व्यक्तित्व के थे। मृत्युंजय का क्षेत्र क्रीड़ा और कोलाहल से भरा हुआ जनरव न था, उनका क्षेत्र था, उपासना और ध्यान—निरंतर एकांत।

इस एकांतवासी क्षत्रिय के पास धन था और वैभव था। नगर के प्रमुख सामंतों में उसकी गणना थी और राज्य-सभा में उसका आसन ऊंचा। उसका नाम सुनकर लोग आदर से मस्तक नमा देते थे और उसके सम्मुख होते ही लोगों में उसके प्रति भक्ति-भाव उमड़ पड़ता था। आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय की साधना विशाल थी, उनमें आत्मिक बल था और आध्यात्मिक ज्योति।

मृत्युंजय के पुत्र न था, केवल एक कन्या थी। कन्या का नाम था यशोधरा। एकमात्र संतान होने के कारण मृत्युंजय का यशोधरा पर स्नेह था। उस समय यशोधरा की अवस्था प्रायः अठारह वर्ष की थी। यशोधरा के यौवन के विकास का काल था, और मृत्युंजय के जीवन के निर्वाण का। अगाध संपत्ति की स्वामिनी यशोधरा से विवाह करने के लिए प्रत्येक युवक का तत्काल तत्पर हो जाना तो स्वाभाविक था ही; पर साथ ही यशोधरा सुंदरी थी, और सुंदरी भी उच्च कोटि की। उसके शांत मुख-मंडल पर भोलापन अपना आधिपत्य जमाए हुए था, उसकी हंसी की सुरीली झंकार में यौवन से पराजित बचपन ने शरण ली थी। हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी सुंदर आंखों में संकोच था और उसके रसयुक्त अरुण कपोलों में लज्जा थी। यशोधरा का यौवन सुधा और उल्लास का मिश्रण था, उसमें गर्व की उच्छृंखलता न थी, उसमें लज्जा की शांति थी।

वृद्ध मृत्युंजय यशोधरा के लिए वर खोज रहे थे। एकाएक उनकी दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी। बीजगुप्त का विवाह न हुआ था, और बीजगुप्त उच्च कुल का नवयुवक था। मृत्युंजय के हितैषियों ने—और उन हितैषियों में वे व्यक्ति भी थे जिनके हृदयों में यशोधरा को पुत्र-वधू बनाने की लालसा प्रबल थी—मृत्युंजय से एक नहीं अनेक बार बीजगुप्त और चित्रलेखा के संबंध का वर्णन किया; पर अनुभवी और वृद्ध मृत्युंजय ने सदा यही उत्तर दिया—"यह बीजगुप्त के उन्माद का काल है; भविष्य बहुत लम्बा-चौड़ा है और बीजगुप्त यथेष्ट शिक्षित। वह इस समय अनुभव-सागर में तिर रहा है।"

बीजगुप्त उस दिन मृत्युंजय के घर पर आमंत्रित था। यशोधरा की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में मृत्युंजय के यहां एक विशाल उत्सव था। बीजगुप्त ने यशोधरा को एक-आध बार जब वह निरी बालिका थी, देखा था। मृत्युंजय से उसका विशेष परिचय भी न था। उस दिन मृत्युंजय के यहां से निमंत्रण पाकर उसे आश्चर्य हुआ और उससे भी अधिक आश्चर्य उस समय हुआ, जब उसने यह पढ़ा कि वह चित्रलेखा के साथ आमंत्रित है।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा से कहा—"चित्रलेखा! एक विचित्र बात हुई है! तुम वयोवृद्ध मृत्युंजय को जानती होगी।"

"हां।"

"और संभवतः उनकी कन्या यशोधरा को!"

कुछ सोचकर चित्रलेखा ने कहा—"हां, उसे भी एक-आध बार देखा है।"

"यशोधरा की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में आज मृत्युंजय के यहां उत्सव में आमंत्रित हूं। मेरा मृत्युंजय से अधिक परिचय नहीं है, इसलिए इस निमंत्रण को पाकर मुझे आश्चर्य हुआ है; पर इससे भी अधिक आश्चर्य मुझको इस बात पर हुआ है कि मेरे साथ-साथ तुम भी आमंत्रित हो और तुम्हें मेरे द्वारा निमंत्रण मिला है।"

"इसका अर्थ यह है कि मेरा जाना अनुचित है।"

"नहीं चित्रलेखा! तुम्हें निमंत्रण मिला है मेरे द्वारा और मेरे साथ चलने को। यह उचित भी है, क्योंकि समाज तुम्हारे और मेरे संबंध को पवित्र मानता है।"

चित्रलेखा ने कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा – "बीजगुप्त! मैं उच्च कुलों के उत्सवों में केवल नर्तकी की स्थिति में ही जाने की अभ्यस्त हूं, बहुत संभव है कि कुलीन स्त्रियां मेरा अपमान करें। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई, तो क्या करना होगा, यह मैं नहीं जानती।"

बीजगुप्त हंस पड़ा – "मेरे साथ रहते हुए तुम्हारा अपमान करने का

साहस किसी को न पड़ेगा, यह विश्वास रक्खो।"– इतना कहकर बीजगुप्त ने श्वेतांक को बुलाया।

श्वेतांक के साथ दोनों बाहर निकले। बीजगुप्त के रथ पर चित्रलेखा और बीजगुप्त आरूढ़ हुए, श्वेतांक ने घोड़ों की लगाम ली।

निर्धारित समय पर आमंत्रित अतिथि मृत्युंजय के द्वार पर पहुंचे। प्रहरी ने उच्च स्वर से कहा– "महासामंत बीजगुप्त का रथ द्वार पर है!" यशोधरा के साथ मृत्युंजय द्वार पर आया। मृत्युंजय ने बीजगुप्त का स्वागत किया और यशोधरा ने चित्रलेखा का – श्वेतांक पीछे-पीछे चला।

द्वार पार कर सब लोग नृत्य-भवन में पहुंचे। पाटलिपुत्र के प्रायः सभी प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित थे। सबों ने बीजगुप्त तथा चित्रलेखा के आने पर हर्ष-ध्वनि की। चित्रलेखा यशोधरा के साथ स्त्रियों के समुदाय में चली गई, बीजगुप्त मृत्युंजय के साथ रहा।

यशोधरा को देखकर चित्रलेखा चकित हो गई। उसे आज तक अपनी सुंदरता पर गर्व था और आत्मविश्वास था; पर यशोधरा ने एक क्षण में उसका गर्व दूर कर दिया; आत्मविश्वास डिगा दिया। यशोधरा ने आदरपूर्वक चित्रलेखा को आसन दिया और स्वयं उसके पास बैठ गई। यशोधरा को चित्रलेखा के पास बैठा देखकर और चित्रलेखा का विशेष आदर करते देखकर अन्य महिलाओं को बुरा लगा।

अपने बाल्यकाल में यशोधरा ने चित्रलेखा का नृत्य देखा था। उस समय वह चित्रलेखा के नृत्य से प्रभावित भी हुई थी। आज उसे उसके पिता का आदेश था कि वह चित्रलेखा के साथ रहे; यह काम यशोधरा को रुचिकर था।

चित्रलेखा के चारों ओर युवतियां एकत्रित हो गई थीं – कुछ हंस रही थीं और कुछ व्यंग्य-वचन कह रही थीं; पर चित्रलेखा ने इसका बुरा न माना। अपनी स्थिति वह बहुत अच्छी तरह से समझती थी। पास ही खड़ी हुई एक बहुत बड़े सामंत की स्त्री ने कहा – "आज नर्तकी चित्रलेखा को हमारी समता करके हमारे समाज में आने के उपलक्ष्य में बधाई है।"

बात जितनी कटु थी, उत्तर उससे अधिक कटु था – "अपने सौंदर्य के बल से, अपना स्वागत कराने के लिए, अभिमानिनी स्त्रियों को बाध्य करने-वाली को बधाई की कोई आवश्यकता नहीं।"

एक ने दूसरी की ओर देखा और दूसरी ने तीसरी की ओर। बात जिस तीव्रता से कही गई थी, उसका प्रभाव एकत्रित पुरुष-समुदाय पर भी पड़ा। बीजगुप्त उस ओर घूम पड़ा। उसे भय था कि चित्रलेखा का, बहुत संभव है, अपमान हो; इस उत्तर-प्रत्युत्तर से उसका भय और बढ़ गया – "क्या बात है?"

चित्रलेखा का क्रोध से लाल मुख एकदम शांत हो गया – "कुछ नहीं, आपस में हंसी हो रही थी !" – उस समय चित्रलेखा हंस रही थी।

यशोधरा चित्रलेखा के इस भाव-परिवर्तन पर मुग्ध हो गई, बीजगुप्त के जाने के बाद उसने चित्रलेखा से कहा – "बहन, तुम लोक-व्यवहार में बहुत कुशल हो !"

"तभी तो इतनी प्रभावशालिनी हूं !" – चित्रलेखा हंस पड़ी।

चित्रलेखा की हास्य-ध्वनि झंकृत हो उठी। नवयुवक-समुदाय की आंखें उधर उठ गईं। बीजगुप्त से उसी समय उन नवयुवकों ने गाने का प्रस्ताव किया।

वीणा लेकर बीजगुप्त ने बागीश्वरी की अलाप भरी – चारों ओर निस्तब्धता छा गई। स्त्री और पुरुष दोनों मंत्रमुग्ध-से बीजगुप्त के गाने को सुन रहे थे। बीजगुप्त ने गाना समाप्त कर दिया। इसके बाद मृत्युंजय ने स्वयं वीणा लेकर यशोधरा की ओर संकेत किया। यशोधरा ने भी बागीश्वरी गाना आरंभ किया। यशोधरा का गाना समाप्त होने पर लोगों ने अनुभव किया कि बीजगुप्त के गाने के आगे यशोधरा का गाना फीका था। चित्रलेखा ने लोगों के ये भाव पढ़ लिए, उसने कहा – "यशोधरा से एक प्रार्थना मैं भी करूंगी – यदि उसकी इच्छा हो, तो इस समय वह कल्याण में कोई गाना गावे।"

लोगों की दृष्टि चित्रलेखा की ओर घूम गई। मृत्युंजय ने चित्रलेखा की ओर देखा। वे चित्रलेखा के कथन के महत्व को न समझ सके। फिर प्रार्थना एक आमंत्रित अतिथि द्वारा की गई थी। मृत्युंजय ने वीणा में कल्याण के स्वर भरे और यशोधरा ने गाना आरंभ किया। इस बार यशोधरा ने सबको मुग्ध कर दिया। लोग उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। गाना समाप्त हो गया और चित्रलेखा ने यशोधरा को बधाई दी– "बहन यशोधरा, मैं तुम्हारे सुंदर गायन के उपलक्ष्य में बधाई देती हूं।"

मृत्युंजय चित्रलेखा की प्रार्थना का महत्व अब समझे – "और चित्रलेखा, मैं तुमको यशोधरा की ओर से धन्यवाद देता हूं।"

इस वार्तालाप को बीजगुप्त सुन रहा था, हंसते हुए उसने कहा – "क्या अब मैं चित्रलेखा से अपना नृत्य दिखाने की प्रार्थना कर सकता हूं ?"

चित्रलेखा ने हंसते हुए उत्तर दिया – "बीजगुप्त की प्रार्थना मेरे लिए आज्ञा के समान है !"

मृत्युंजय ने वीणा ली और बीजगुप्त ने मृदंग। चित्रलेखा ने नृत्य आरंभ कर दिया। सब लोग चित्रलेखा की प्रशंसा कर रहे थे। और चित्रलेखा अपना कौशल दिखा रही थी। इसी समय प्रहरी ने पुकारा– "योगी कुमारगिरि अपने शिष्य के साथ द्वार पर पधारे हैं।"

मृत्युंजय ने वीणा रख दी, वे कुमारगिरि का स्वागत करने बाहर गए। मृत्युंजय के वीणा रखने के साथ ही चित्रलेखा का नृत्य बंद हो गया।

मृत्युंजय कुमारगिरि को भीतर ले आए। कुमारगिरि के साथ विशालदेव भी था। कुमारगिरि के सामने सब लोग खड़े हो गए। उसी समय चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा –"मैं अब जाऊंगी, मेरा काफी अपमान हो चुका है ?"

''यह कैसे ?''

''मेरी दृष्टि में कला का सर्वोच्च स्थान है। जो मनुष्य कला का अपमान करता है, वह मनुष्य नहीं है, पशु है। मृत्युंजय को कुमारगिरि का स्वागत करने के लिए नृत्य को बंद कर देना मेरा अपमान नहीं है तो क्या है।''

बीजगुप्त मुस्कराया– ''जैसी तुम्हारी इच्छा।''

इस समय तक कुमारगिरि आसन पर बैठ गए थे। चित्रलेखा ने आगे बढ़कर योगी कुमारगिरि का अभिवादन किया, फिर उसने मृत्युंजय से कहा – ''मैं जाने की आज्ञा चाहती हूं।''

मृत्युंजय के उत्तर देने के पहले ही कुमारगिरि ने उत्तर दिया – ''यह क्यों ? क्या मेरी उपस्थिति तुम्हें अरुचिकर है नर्तकी ? और यह स्वाभाविक भी है।''– कुमारगिरि का शिशु-सा कोमल तथा मधुर हास्य संगीत की भांति गूंज उठा।

चित्रलेखा ने कुछ सोचकर कहा – ''नहीं योगी, तुम्हारी उपस्थिति संसार में किसी को अरुचिकर नहीं हो सकती, इतना विश्वास रक्खो। मेरे यहां से जाने का दूसरा कारण है।''

''पर तुमने जाने का अवसर उचित नहीं चुना।''

''तो फिर मैं न जाऊंगी।''

मृत्युंजय ने वीणा फिर उठाई; पर चित्रलेखा ने नृत्य आरंभ करने से इनकार कर दिया। इस बार यशोधरा ने आगे बढ़कर चित्रलेखा से कहा– ''बहन, तुम्हारी बात मैंने नहीं टाली थी, इस बार मेरा अनुरोध है कि तुम नृत्य करो, और मेरा अनुरोध तुम न टालोगी, इसका मुझे विश्वास है।''

चित्रलेखा ने यशोधरा का अनुरोध वास्तव में न टाला, उसने नृत्य आरंभ कर दिया। योगी कुमारगिरि ने यशोधरा की ओर देखा – और थोड़ी देर तक वे एकटक यशोधरा की ओर देखते रहे। योगी ने चित्रलेखा और यशोधरा की तुलना आरंभ कर दी। दोनों ही उच्च कोटि की सुंदरियां थीं, पर एक में मादकता प्रधान थी और दूसरी में शांति ! चित्रलेखा की मादकता भयानक थी – उसका नृत्य उसकी सजीवता की प्रतिमूर्ति; पर साथ ही यशोधरा की शांति अथाह सिंधु की भांति थी, जिसमें पड़कर मनुष्य अपने को भूल जाता है। चित्रलेखा जीवन की हलचल थी; यशोधरा मृत्यु की शांति ! कुमारगिरि को अनुभव हुआ, मानो वह संसार की ओर आकर्षित हो

रहा है। अनुराग की सजीवता विराग की अकर्मण्यता पर विजय पा रही है।

नृत्य समाप्त हुआ। मृत्युंजय ने दासी से पूछा – "भोजन में कितना विलम्ब है?"

"भोजन तैयार है, केवल आज्ञा की देर है।"

आमंत्रित अतिथि भोजन-गृह में जाकर बैठ गए। दासियों ने भोजन परसना आरंभ किया। बीजगुप्त के पास यशोधरा बैठी– चित्रलेखा यशोधरा के पास थी और उसी के पास श्वेतांक।

भोजन आरंभ हुआ और पास बैठे हुए अतिथियों में वार्तालाप। यशोधरा पहले कभी बीजगुप्त से न बोली थी। बीजगुप्त ने कहा – "देवि! आज पहली बार हमारा पूरा परिचय हुआ है, और इस परिचय पर मैं अपने को बधाई देता हूं।"

अपने जीवन में आज पहली बार यशोधरा की हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी आंखें, एक दूसरे मनुष्य की आंखों के सामने न उठ सकीं। यशोधरा का हृदय धड़क रहा था, धीरे से उसने उत्तर दिया – "मेरा परिचय कोई महत्व की बात नहीं है।"

बातचीत सुनकर चित्रलेखा हंस पड़ी – "भगवान् करे यह परिचय घनिष्ठता में परिणत हो, और घनिष्ठता जीवन के पवित्र बंधन में।"

यशोधरा ने कृतज्ञता-भरे नेत्रों से चित्रलेखा की ओर देखा, बीजगुप्त ने कौतूहल से। पर श्वेतांक एकटक यशोधरा की ओर देख रहा था। एकाएक यशोधरा की आंखें श्वेतांक से मिल गईं। इस समय तक यशोधरा ने श्वेतांक को न देखा था। अपने भवन में आमंत्रित प्रत्येक व्यक्ति को वह पहचानती थी; श्वेतांक केवल ऐसा व्यक्ति था, जिसको वह नहीं जानती थी। बीजगुप्त से यशोधरा ने पूछा – "यह नवयुवक कौन है?"

"मेरा सेवक और साथ ही मेरा छोटा भाई!" – बीजगुप्त हंस पड़ा। यशोधरा को कौतूहल हुआ – "सेवक और छोटा भाई।" – बात भी विचित्र थी– "यह कैसे?"

"यह इस प्रकार कि इस व्यक्ति का नाम श्वेतांक है। यह भी क्षत्रिय नवयुवक है और उच्च कुल का है, पर अभी तक ब्रह्मचारी है और अपने गुरु के साथ रहा है। गुरु ने पाप का पता लगाने के लिए इस व्यक्ति को मेरे पास छोड़ दिया है – मेरे द्वारा यह नवयुवक समाज में पदार्पण कर रहा है।"

यशोधरा का आश्चर्य और भी बढ़ा – "पाप का पता लगाने के लिए इनके गुरु ने इनको आपके पास भेजा है? क्या वास्तव में आपका स्थान अथवा आपके व्यक्तित्व से संपर्क पाप का पता लगाने का उपयुक्त स्थान है?"

बीजगुप्त मन-ही-मन हसा। कितनी भोली बालिका थी और कितनी भ्रम में थी –"संभवतः पापी-से-पापी मनुष्य नहीं कह सकता कि वह पापी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने को अच्छा समझता है, अपने को ठीक तरह से समझना उसके लिए असंभव है। यदि श्वेतांक इस निर्णय पर पहुंचे कि मैं पापी हूं, तो मैं वास्तव में पापी हूं।"

यशोधरा के उर में एक ठेस-सी लगी। जिस व्यक्ति के प्रणय-बंधन की कल्पना से उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा था, वही व्यक्ति एक बहुत बड़े आचार्य द्वारा पाप का पता लगाने का उपयुक्त साधन माना गया था! उसने श्वेतांक की ओर देखा– कितना भोला और सुंदर नवयुवक था। और बीजगुप्त?

उस समय भोजन समाप्त हो गया था। लोग उठ खड़े हुए। हाथ-मुंह धोकर फिर सब लोग एकत्रित हुए। बीजगुप्त ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर मृत्युंजय से उसका परिचय कराया। इसके बाद सब लोग अपने-अपने घर को विदा हुए।

दसवा परिच्छेद

मृत्युंजय के उस आलोकित भवन का आलोक वैसा ही रहा, सजीवता में कमी अवश्य हो गई थी। अनावश्यक अतिथियों के चले जाने के बाद नाटक के प्रधान अभिनेता ही रह गए। योगी कुमारगिरि, विशालदेव, चित्रलेखा, बीजगुप्त और श्वेतांक, केवल इन्हीं व्यक्तियों को मृत्युंजय ने रोक लिया था। थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद मृत्युंजय ने बीजगुप्त का हाथ पकड़ा। उन्होंने भरे हुए गले से कहा – "सामंत बीजगुप्त! इस उत्सव में एक बड़ा रहस्य छिपा था और उस रहस्य से तुम्हारा बड़ा घनिष्ठ संबंध है।"– इतना कहकर उन्होंने यशोधरा की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा। बीजगुप्त के मुख का रंग उतर गया। चित्रलेखा मुसकराई।

"और मुझे पूर्ण आशा है कि वृद्ध मृत्युंजय की बात अस्वीकृत न होगी।"

मृत्युंजय के भावों की थाह प्रायः सब व्यक्तियों ने पा ली थी, फिर भी बीजगुप्त ने कहा – "देव! स्वीकार करना अथवा न करना प्रस्ताव की उपयुक्तता और परिस्थिति की अनुकूलता पर निर्भर होता है। आपका प्रस्ताव जैसा होगा, उसके अनुसार मेरा उत्तर भी होगा।"

मृत्युंजय ने कुछ देर तक सोचा – "बीजगुप्त, तुम्हारा विवाह अभी तक नहीं हुआ है?"

बीजगुप्त ने सुना और चित्रलेखा की ओर देखा। क्या उत्तर दे, वह यह निर्णय न कर सका। बात ठीक थी, पर साथ-साथ बीजगुप्त के मतानुसार गलत भी थी – "शास्त्रानुसार नहीं।"

इस बार कुमारगिरि ने गंभीर स्वर में कहा – "युवा! क्या शास्त्र-अविहित भी विवाह हो सकते हैं?"

बीजगुप्त ने कहा – "स्त्री और पुरुष के चिरस्थायी संबंध को ही विवाह कहते हैं।"

कुमारगिरि हंस पड़े – "पर विवाह शब्द समाज द्वारा निर्मित है। शास्त्र स्त्री और पुरुष के संबंध को पवित्र बनाकर समाज में मान्य करा देता है। बीजगुप्त, तुम अर्ध-सत्य की शरण ले रहे हो!"

बीजगुप्त ने उसी गंभीरता से कहा – "योगिराज, सत्य आधा नहीं होता, वह पूर्ण होता है; पर यह तर्क-वितर्क का समय नहीं है, इसलिए इस समय उत्तर देना अनुचित होगा।"– इतना कहकर बीजगुप्त ने मृत्युंजय से कहा – "आर्य! मैंने कहा था कि मेरा विवाह शास्त्रानुसार नहीं हुआ है, इसको स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। लोक की दृष्टि में मैं अविवाहित हूं; पर मैं वास्तव में विवाहित हूं। चित्रलेखा मेरी पत्नी है। यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार कर भी नहीं सकता हूं, फिर भी मेरा और चित्रलेखा का संबंध पति और पत्नी का-सा है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूं – और ऐसी स्थिति में मेरा अब विवाह करना असंभव है, क्योंकि मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।"

जिस समय बीजगुप्त यह कह रहा था, उसकी दृष्टि नीचे थी। मृत्युंजय ने कहा– "बीजगुप्त, तुम्हारा कहना संभव है उचित हो; पर जिस समय लोक तुमको अविवाहित कहता है, उस समय तुम अविवाहित हो। रही विवाह करने की बात, वहां तुमसे मैं तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित करा सकता हूं कि विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है और इसलिए आवश्यक है। चित्रलेखा की संतान बीजगुप्त की संतान न होगी और न वह संतान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी ही हो सकती है। कभी इस पर भी विचार किया है?"

वास्तव में बीजगुप्त ने इस पर विचार न किया था। बीजगुप्त ने इसका कोई उत्तर न दिया। यह उसके लिए बिल्कुल नई समस्या थी। मृत्युंजय इस बार चित्रलेखा की ओर मुड़े – "देवि चित्रलेखा! तुम विदुषी हो। तुमसे अधिक कहना व्यर्थ है। तुम बीजगुप्त की परिस्थिति को अच्छी तरह

से समझती हो।''

चित्रलेखा अभी तक मौन थी। इस बार उसने उत्तर दिया – ''आर्यश्रेष्ठ! तुम्हारा कथन सर्वथा उचित है। मैं समाजच्युत नर्तकी ही हूं, बीजगुप्त की पत्नी होना मेरे लिए असंभव है। ऐसी स्थिति में मैं वह करने को प्रस्तुत हूं जिससे बीजगुप्त का भला हो; पर आप इतना जानते हैं कि ऐसा करने में मुझे बड़ा त्याग करना पड़ेगा!''

''त्याग करना पड़ेगा नर्तकी!''– कुमारगिरि मुस्कराए – ''बड़ी विचित्र बात कह रही हो। तुम संभवतः अपनी मन:प्रवृत्ति को भूल रही हो। तुमने एक बार मुझसे कहा था कि तुम विराग के जीवन को अपनाना चाहती हो, उसके लिए यह सबसे अच्छा अवसर है।''

कुमारगिरि की इस बात से बीजगुप्त चौंक पड़ा। उसने कहा– ''योगिराज, यदि आप विराग पर विश्वास करते हैं, और एक व्यक्ति को विराग का उपदेश दे सकते हैं, तो फिर मुझे क्यों बंधन में बंधने को बाध्य किया जा रहा है?''

''इसलिए कि तुम विराग के योग्य नहीं हो। और साथ ही तुम समाज के नियमों के प्रतिकूल भी चल रहे हो। तुम्हें यह उचित होगा कि तुम कम-से-कम समाज के नियमों का तो पालन करो ही।''

चित्रलेखा इस समय तक कुमारगिरि के कथन पर विचार कर रही थी, उसने कहा – ''योगी, एक प्रश्न और करूंगी, क्या तुम मुझे गुरुदीक्षा देने के लिए तैयार हो? यदि हां, तो फिर इसी समय मैं तुम्हारी शिष्या हुई।''

कुमारगिरि के नेत्र स्वयं ही विशालदेव की ओर घूम पड़े। विशालदेव उस समय अपने गुरु की ओर देख रहा था। थोड़ी देर तक कुमारगिरि कुछ सोचते रहे – ''नर्तकी चित्रलेखा! तुम्हें दीक्षा देना मेरे लिए असंभव है!''

इस बार चित्रलेखा हंस पड़ी – ''मुख से कह देना सरल होता है, करना बड़ा कठिन कार्य है। योगी! तुम्हारे लिए विराग चाहे जितना सरल हो; पर मेरे लिए कठिन है। अकेली विराग के क्षेत्र में विचरना मेरे लिए असंभव-सा है। अभी तक अनुराग के क्षेत्र में हूं, और संसार भले ही उस क्षेत्र को पवित्र न माने; पर ईश्वर के आगे और मेरे आगे वह क्षेत्र पवित्र है। उससे बाहर निकलने के अर्थ होते हैं दूषित क्षेत्र में पदार्पण करना, और व्यर्थ पाप करने के लिए मैं प्रस्तुत नहीं हूं।''

बात बनी, और बिगड़ गई– मृत्युंजय ने इसका अनुभव किया।

बात बिगड़ी और बन गई– बीजगुप्त ने इसका अनुभव किया।

कुमारगिरि चित्रलेखा को जानता था और चित्रलेखा कुमारगिरि को। श्वेतांक और विशालदेव – दोनों ही इस बातचीत के गूढ़ महत्व को समझ रहे थे। एक यशोधरा ही ऐसी थी, जो न कुछ अनुभव करती थी, न कुछ

जानती थी और न कुछ समझती थी। उसने मृत्युंजय से कहा – "पिताजी! रात्रि अधिक बीत गई है।"

वृद्ध मृत्युंजय ने अपनी पुत्री की ओर देखा और फिर चित्रलेखा की ओर। दोनों में कितना भेद था! एक देवी थी, दूसरी दानवी, एक शांति थी, दूसरी उन्माद। और बीजगुप्त? परिस्थिति-चक्र का एक अभागा शिकार; पर साथ ही मनुष्यता से पूर्ण मनुष्य।

मृत्युंजय ने चित्रलेखा से कहा – "तुम्हारे क्षेत्र को अपवित्र कौन कहता है! जो कुछ तुम कर रही हो, वह अपनी मनःप्रवृत्ति के अनुसार, और मैं यह भी मानता हूं कि तुम्हारा सारा व्यवहार प्रेम का है। प्रेम के क्षेत्र में अपवित्रता का कोई स्थान नहीं है; पर देवि, क्या वह मनुष्य, जिससे तुम प्रेम करती हो, यदि ठीक मार्ग पर न हो, तो उसको ठीक मार्ग पर लाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है? प्रेम में त्याग की आवश्यकता होती है, और बीजगुप्त के लिए जो त्याग तुम करोगी, वह महान होगा।"

बात जिस ढंग से कही गई थी, उसका चित्रलेखा पर प्रभाव पड़ा। बीजगुप्त बीच में बोल उठा – "आर्यश्रेष्ठ! चित्रलेखा से यह कहना व्यर्थ है। बनना और बिगड़ना, इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है। चित्रलेखा न मुझे बना सकती है और न बिगाड़ सकती है और मैं अपने लिए यह कह सकता हूं कि मेरा और चित्रलेखा का संबंध अमर है।"

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ; पर चित्रलेखा बैठी ही रही। उसने कहा– "आर्यश्रेष्ठ! तुम जो बात कह रहे हो वह ठीक हो या न हो; पर मुझे यह करना होगा, और यह करना होगा अपने लिए नहीं, वरन् बीजगुप्त के लिए – इतना विश्वास रक्खो।"– चित्रलेखा ने यशोधरा की ओर देखा– "और आर्यश्रेष्ठ! तुम्हारी कन्या के लिए बीजगुप्त अच्छा वर है। यह विवाह सबसे सुंदर होगा।"– इतना कहकर चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा – "बीजगुप्त! तुम्हें यशोधरा-सी पत्नी मिलना असंभव है। आज से तुम्हारा और यशोधरा का संबंध पक्का हो गया।"

बीजगुप्त उस समय द्वार के पास खड़ा था। – "चित्रलेखा! तुम्हारा कहना अनुचित है और यह मेरे लिए असंभव है। इस समय मैं इतना ही कह सकता हूं। अच्छा आर्यश्रेष्ठ, विदा!"– इतना कहकर बीजगुप्त मृत्युंजय के भवन से बाहर चला गया।

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई – "आर्यश्रेष्ठ! आप बीजगुप्त के कथन का बुरा न मानिएगा। आवेश में आकर मनुष्य भले और बुरे का ज्ञान खो बैठता है। उस समय यदि कोई दूसरा व्यक्ति उस पर अपनी धारणा बना ले, तो अनुचित है। मैं आपको इतना विश्वास दिलाती हूं कि बीजगुप्त का और आपकी कन्या का संबंध बहुत श्रेष्ठ होगा, और इस संबंध का होना

आवश्यक भी है।''

श्वेतांक के साथ चित्रलेखा भी बीजगुप्त के पीछे-पीछे चल दी। इन लोगों के चले जाने के बाद मृत्युंजय को परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान हुआ। उन्होंने कुछ देर तक मौन रहकर कुमारगिरि से कहा– ''योगिराज! मेरी समझ में कुछ नहीं आया; पर इस बातचीत से इस निष्कर्ष पर पहुंच सका हूं कि इस नर्तकी का बीजगुप्त पर बहुत बड़ा प्रभाव है।''

''यह अनुमान उचित है।''

''और साथ ही नर्तकी चित्रलेखा का हृदय बहुत स्वच्छ है।''

इस पर कुमारगिरि मौन ही रहे। उनकी आंखें न जाने क्यों आप-ही-आप विशालदेव की ओर उठ गईं। विशालदेव मन-ही-मन मुस्कराया।

मृत्युंजय ने फिर कहा – ''योगिराज, क्या बीजगुप्त पर अधिक दबाव डालना उचित होगा? प्रश्न यह है। चित्रलेखा कह गई है, और जो कुछ वह कह गई है उसे पूरा करेगी, इतना विश्वास है, फिर भी अब यह इच्छा होती है कि बीजगुप्त को छोड़ ही दिया जाय, क्योंकि चित्रलेखा के मन को आघात पहुंचेगा।''

इस बार कुमारगिरि बोले – ''चित्रलेखा के मन को आघात पहुंचेगा, इस पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। बहुत संभव है कि चित्रलेखा स्वयं ही बीजगुप्त को छोड़ देने पर प्रस्तुत हो, और ऐसी अवस्था में बीजगुप्त का जीवन संभल जाएगा। मैं तो यहां तक कहूंगा कि चित्रलेखा से बीजगुप्त का संबंध टूटना ही उचित है।''

कुमारगिरि उठ खड़े हुए, और कहा – ''मृत्युंजय, यशोधरा के लिए बीजगुप्त से अच्छा वर तुमको न मिल सकेगा – यह समझ रखना।''

ग्यारहवां परिच्छेद

चित्रलेखा ने अपने जीवन में न जाने कितनी बार प्रेम की व्याख्या की थी और प्रत्येक बार उसने अनुभव किया था कि उसका पिछला निर्णय गलत था।

सबसे प्रथम प्रेम चित्रलेखा के लिए ईश्वरीय था। उसने अपने पति से प्रेम किया था। उस प्रेम में पवित्रता थी। पति के प्रति निःसीम भक्ति थी। पति से प्रेम में चित्रलेखा ने अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व से मिला दिया था; नहीं, उसने अपना अस्तित्व ही मिटा दिया था। वह हंसती थी पति को प्रसन्न करने के लिए; वह बोलती थी पति को प्रसन्न करने के लिए।

यहां तक कि वह स्थित थी केवल अपने पति के लिए। उसके जीवन का प्रत्येक पल उसके पति को समर्पित था। पति उसका विश्व था, परमेश्वर था, और अस्तित्व था, और पति के प्रेम में उसे कितना सुख था। पति से प्रेम उसके आत्म-बलिदान की पराकाष्ठा थी और आत्म-बलिदान में कितना सुख होता है, यह आत्म-बलिदान करनेवाला ही जानता है।

पति की मृत्यु के बाद उसका संसार अंधकारमय हो गया। उसे अनुभव हुआ कि उसकी साधना तथा तपस्या, ये सब व्यर्थ गए। उसने कभी-कभी आत्म-हत्या की भी बात सोची; पर आत्म-हत्या महान पाप है, वह यह जानती थी; उसे बताया गया था कि तपस्या जीवन का प्रधान अंग है और विधवा का कर्तव्य है संयमयुक्त साधना। चित्रलेखा ने यह भी किया; पर यह उसके लिए कठिन था। जिस समय तक पति जीवित था, वह पूजा कर सकती थी, तपस्या कर सकती थी और साधना में रत रह सकती थी; क्योंकि इन सबका एक केंद्र स्थित था—एक आधार उसके पास था—केंद्र के टूट जाने पर तन्मयता विचलित हो गई, विश्वास अपना आधार न पाकर डिग गया।

इसके बाद उसने कृष्णादित्य से प्रेम किया—इस बार प्रेम दैवी न था; प्राकृतिक था। इस बार प्रेम में भक्ति न थी, केवल आत्म-विस्मरण था। इस बार प्रेम में अपना अस्तित्व मिटाना न था, वरन् अपने और अपने प्रेमी के अस्तित्व को एक में मिला देना था। कृष्णादित्य से प्रेम में चित्रलेखा ने प्रथम बार पिपासा का अनुभव किया, वह चौंक उठी।

पिपासा के महत्व को वह न जानती थी, पति के प्रेम में तो उसने अपने को मिटा ही दिया था, फिर पिपासा कैसी! इस बार चित्रलेखा ने अपनी इच्छाओं का अनुभव किया। अपने उद्‌गारों के उग्र रूप को देखकर वह पहले तो कुछ डरी, फिर उसे सुख हुआ। इस बार उसने अपने में जीवन का अनुभव किया। प्रेम भक्ति नहीं है इसलिए एक ओर से नहीं होता; प्रेम संबंध है, वह दोनों ओर से होता है। प्रेम आत्मा के पवित्र संबंध को कहते हैं। प्रेम में कंपन होता है, पिपासा होती है, आत्म-विस्मरण होता है। वहां तृप्ति का कोई स्थान नहीं। प्रेम में आत्म-बलिदान होता है; पर वह एक ओर से नहीं, दोनों ओर से। कृष्णादित्य भी चला गया। इस बार चित्रलेखा ने देखा कि प्रेम अमर नहीं है; एक पवित्र स्मृति प्रतिदिन धुंधली होती हुई मिट भी सकती है।

बीजगुप्त चित्रलेखा के जीवन में आया। इस बार चित्रलेखा ने प्रेम में केवल पिपासा और कभी-कभी आत्म-विस्मरण का अनुभव किया, आत्म-बलिदान का नहीं। इस बार उसने प्रेम की मादकता को देखा। इस बार प्रेम के साथ उसने ऐश्वर्य तथा भोग-विलास के मनोहर रूप को देखा—

चित्रलेखा ने एक नई बात और देखी; जीवन में केवल प्रेम ही नहीं है और न प्रेम जीवन का एकमात्र आधार है। प्रेम के साथ अन्य उद्‌गार भी होते हैं। उसने यह देखा कि स्वयं प्रेम केवल कुछ दिनों तक के सुख का आधार हो सकता है। उसके सुख को स्थायी बनाने के लिए आत्म-विस्मरण होना आवश्यक है; पर आत्म-विस्मरण प्रकृति से असंभव है। इसलिए आत्म-विस्मरण को उत्पन्न करने के लिए मदिरा की आवश्यकता होती है।

इसके बाद वह कुमारगिरि की ओर आकर्षित हुई। कुमारगिरि युवा था, सुंदर था, प्रतिभावान था और"! चित्रलेखा आगे कुछ न सोच सकी—कुमारगिरि की ओर वह बिना अपनी इच्छा के ही आकर्षित हुई। वह यह समझती थी; पर क्या वह अपनी इच्छा को जानती भी थी!

चित्रलेखा कुमारगिरि से प्रेम करने लग गई, इस बार अपने प्रेम के आधार बीजगुप्त के उपस्थित रहते हुए; इसलिए चित्रलेखा को कुमारगिरि के पास जाने का साहस न हुआ था।

पर मृत्युंजय के भवन के उत्सव की बात ने उसे साहस दिया, साहस के साथ उसकी मनुष्यता को धोखा देने का एक बहाना भी दिया। उसने मन में कहा—"बीजगुप्त को सुखी बनाना मेरा कर्तव्य है, उसे मुक्त कर देना ही मेरा महान त्याग होगा और उसके जीवन को सार्थक बनाना होगा। मुझे बीजगुप्त को छोड़ देना ही पड़ेगा, सदा के लिए छोड़ देना पड़ेगा।"

उस रात चित्रलेखा सो न सकी। वह इन्हीं बातों पर विचार करती रही। प्रातःकाल उसकी आंख लग गई। वह देर से सोकर उठी। उस समय मध्याह्न हो गया था। उसने दासी से पूछा—"बीजगुप्त के यहां से तो कोई समाचार नहीं आया?"

"नहीं!"

चित्रलेखा ने स्नान किया। भोजन करने से उसने इनकार कर दिया। रथ लाए जाने की आज्ञा देकर वह वस्त्रागार में गई। उसने अपने सारे आभूषण उतार दिए। एक केसरिया रंग की रेशमी साड़ी निकालकर उसने पहन ली। अपने केश उसने उस दिन नहीं बांधे। रथ उस समय तक द्वार पर आ गया था।

चित्रलेखा ने बीजगुप्त को एक पत्र लिखा। दासी को उसने आज्ञा दी कि वह संध्या समय तक न लौटे, तो वह पत्र बीजगुप्त को दे दिया जाय। इसके बाद उसने घर का भार अपनी एक विश्वस्त दासी पर सौंपा। वह दासी आश्चर्य में थी। चित्रलेखा ने केवल इतना ही कहा—"आश्चर्य न कर सुनयना! मैं कुछ दिनों के लिए इस वैभव को छोड़ रही हूं। जब तक मैं न लौटूं तब तक यहां की स्वामिनी तुम हो।"

रथ पर बैठकर उसने कुमारगिरि की कुटी को प्रस्थान किया। राजमार्ग पर रथ छोड़कर चित्रलेखा ने रथवान से कहा—"यहां ठहरो! यदि दोपहर के अंदर मैं न लौटूं तो तुम रथ ले जाना। फिर मेरी प्रतीक्षा न करना।"

जिस समय चित्रलेखा कुमारगिरि की कुटी में पहुंची, कुमारगिरि ध्यानावस्थित बैठे थे। चित्रलेखा वहीं बैठ गई। प्रायः एक पहर बाद कुमारगिरि ने अपनी समाधि तोड़ी। उसने आंखें खोलीं तो देखा चित्रलेखा सामने बैठी हुई थी। चित्रलेखा के नेत्र बंद थे, वह कुछ सोच रही थी। उसके शरीर पर केवल एक वस्त्र था। कुमारगिरि ने अभी तक चित्रलेखा का उतावला तथा ऐश्वर्योन्मत्त सौंदर्य ही देखा था, इस बार उसने शांत और तेज से भरी हुई चित्रलेखा को देखा। चित्रलेखा के पीले तथा कृश मुख पर शांति की आभा ने उसकी लोलुपता को ढंक लिया था। मंत्रमुग्ध-सा कुमारगिरि चित्रलेखा की सुंदरता को निरख रहा था। कुमारगिरि ने धीरे से कहा—"नर्तकी!"

चित्रलेखा ने अपनी आंखें खोल दीं—"गुरुदेव की समाधि समाप्त हो गई?"

"हां! पर नर्तकी चित्रलेखा, तुम यहां किसलिए आई?"

"गुरुदेव से दीक्षा लेने!"

"पर तुम्हें याद होगा कि मैंने तुम्हें दीक्षा देने से इनकार कर दिया था।"

"हां, मुझे याद है! फिर भी चली आई हूं। मैंने त्याग किया है, आज अपने ऐश्वर्य को मैंने तिलांजलि दे दी है। मैं अपना सर्वस्व त्याग चुकी हूं। केवल ममत्व शेष रह गया है। इस ममत्व को मैं आपके सामने ले आई हूं, उसको मुझसे छुड़वाना आपका कर्तव्य है और धर्म है।"

"नहीं नर्तकी, नहीं!"—चित्रलेखा की हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी आंखों के आगे वे कांप उठे, वे चिल्ला उठे—"नर्तकी! नहीं, यह असंभव है! मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता।"—उस समय कुमारगिरि अपने को भूल गए—"तुम्हें दीक्षा देने के अर्थ होते हैं, गिरना, नीचे गिरना। कहां? नीचे ही नीचे जहां अंत ही नहीं है! मैं तुम्हें जानता हूं और मैं अपने को भी जानता हूं। तुम्हें ऊपर उठाना कठिन है, स्वयं नीचे गिरना सरल है।"

कुमारगिरि उठ खड़े हुए। वे उठकर विक्षिप्त की भांति कुटी में टहलने लगे। चित्रलेखा मूर्ति की भांति मौन बैठी थी। कुमारगिरि ने रुककर फिर कहा—"नर्तकी! सच कहना! मैं तुमसे झूठ नहीं बोलता हूं, कहता हूं कि सच कहना, तुम यहां क्यों आई हो? क्या वास्तव में तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहती हो? क्या वास्तव में तुम भोग-विलास को तिलांजलि देने आई हो? क्या यह संभव है? बोलो! मौन क्यों हो?"—कुमारगिरि हंस पड़े—"तुम सच नहीं बोलना चाहती, तुम झूठ भी नहीं बोल सकती। तुम्हारा मौन

'नहीं' का द्योतक है।''

चित्रलेखा की निद्रा भंग हुई। उसने कुमारगिरि की ओर देखा, उसके नेत्र कुमारगिरि के नेत्रों से मिल गए। उसने शांत भाव से उत्तर दिया—''योगी! अपनी विजय और पराजय की अवहेलना करके एक बार तुम मुझसे सच बोले थे, मैं भी तुमसे सच ही कहूंगी—मैं तुमसे प्रेम करने आई हूं!''

''मेरा अनुमान फिर मिथ्या न था। धन्यवाद! तुम मुझसे प्रेम करने आई हो, मुझसे? जिसने कभी किसी से प्रेम नहीं किया, जो जानता ही नहीं कि प्रेम क्या है। कितनी विचित्र बात है; पर एक बात और पूछूंगा। प्रेम किस प्रकार किया जाता है? मैंने अभी तक यह समझा था कि मनुष्य में प्रेम की उत्पत्ति स्वयं हो जाती है। यह नहीं जानता था कि प्रेम करने के लिए पहले मनुष्य कटिबद्ध होता है, फिर प्रेम करता है।''—कुमारगिरि हंस रहे थे; पर उनका वह हास कितना शुष्क था, कितना व्यंग्यात्मक था! चित्रलेखा चौंक पड़ी।

उसने कहा—''योगी! मेरे शब्द ठीक न थे—मैं अपने भावों को ठीक शब्दों में व्यक्त न कर सकी। मैं तुमसे प्रेम करती हूं। तुम जानते हो—तुम बहुत दिनों से जानते हो! मैं तुम्हारे पास इसलिए आई हूं कि तुम भी मुझसे प्रेम करो। अब तो मैंने सब कुछ कह दिया।''

''तुम मुझसे प्रेम करती हो—इतना यथेष्ठ है। मैंने कभी तुम्हें इसमें नहीं रोका और न इसमें मैं तुम्हें रोक ही सकता था। प्रेम के बदले में प्रेम की आशा करना ठीक हो सकता है; पर उस आशा को सफलीभूत बनाने की चेष्टा करना अनधिकार चेष्टा है।''

चित्रलेखा का मुख पीला पड़ गया, पर एक क्षण में ही वह सम्हल गई। उसने गंभीर, बहुत गंभीर होकर कहा—''ठीक कहते हो योगी! इस बार भी मैंने गलत कहा था। मैं यहां आई हूं प्रेम की अतृत्प्त प्यास को तृप्त करने। मैं यहां आई हूं, जिससे मैं प्रेम करती हूं, उसके चरणों की धूल को नित्यप्रति अपने मस्तक पर चढ़ाने के लिए। मैं यहां आई हूं तुममें अपने को डुबा देने के लिए, सेवा और भक्ति, स्वयं का विस्मरण और अतृप्त प्यास—ये प्रेम के द्योतक हैं। मैंने यह सत्य, विश्वास और कर्तव्य के आवरण में, अपने विवाह के समय देखा था; पर उन आवरणों के रहते हुए मैं उस समय का वास्तविक महत्व न समझ सकी थी। अब फिर इस सत्य को देखा, इसलिए तुम्हारे पास आई हूं।''

इस बार कुमारगिरि गंभीर हो गए—''क्या वासना को अलग रखकर प्रेम संभव हो सकता है!''—उनके मन में यह प्रश्न उठा; उनकी साधना ने और उनके विश्वास ने उत्तर दिया—''नहीं''—उनके हृदय ने कहा—''मूर्ख! शुद्ध

प्रेम में वासना और तृष्णा का कोई स्थान नहीं !''

कुमारगिरि ने कहा—''कुछ समय दो देवि ! बड़ी कठिन समस्या है ।''

चित्रलेखा ने कुमारगिरि के पैर पकड़ लिए—''समय देने का समय नहीं रहा देव ! जो होना था वह हो चुका । मैं बहुत आगे बढ़ गई हूं—पीछे जाना असंभव है ! मैं इस कुटी में रहने आई हूं, यहां से जाने के लिए नहीं।''

इस बात का उत्तर न देकर कुमारगिरि ने कहा—''क्या तुम यहां पैदल आई हो ?''

''नहीं रथ पर आई हूं !''

''रथ कहां है ?''

''राजमार्ग पर छोड़ आई थी, वह चला गया होगा !''

कुमारगिरि ने ऊपर देखा—''हे भगवान् ! इसमें क्या रहस्य छिपा है ? तुम्हारी इच्छा क्या है, जो तुम्हारी इच्छा है, होगी !'' इस बार अपने चरणों पर पड़ी हुई चित्रलेखा को उन्होंने उठाया—''अच्छा देवि ! तो फिर तुम्हें दीक्षा दूंगा । भगवान् की इच्छा है कि मैं संसारस्थित वासनाओं से युद्ध करूं—तो फिर ऐसा ही हो !'' इतना कहकर कुमारगिरि ने विशालदेव को बुलाया ।

विशालदेव के आने पर कुमारगिरि ने उससे कहा—''विशालदेव ! तुम्हें देवि चित्रलेखा के लिए कुटी तैयार करनी पड़ेगी ।''

विशालदेव के मुख पर आश्चर्य के भाव अंकित हो गए । इस रहस्य को वह भली भांति समझता था । उसने चित्रलेखा को अभिवादन करते हुए कहा—''देवि, तुम्हारा स्वागत है !'' इस बार उसने कुमारगिरि पर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली ।

कुमारगिरि विशालदेव की उस दृष्टि का मतलब समझ गए—''तुम्हें आश्चर्य हो रहा है वत्स, तुम मेरी निर्बलता को एक बार देख चुके हो, इसलिए तुम्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है; पर यह याद रक्खो, मनुष्य का कर्तव्य है कमजोरियों पर विजय पाना । आज भगवान् ने मुझ पर एक सत्य प्रकट किया है । जीवन की उत्कृष्टता वासना से युद्ध करने में है, और मैं यह करने जा रहा हूं । इसीलिए मैं चित्रलेखा को दीक्षा देनेवाला हूं ।''

विशालदेव मुसकराया—''गुरुदेव का कथन सर्वथा उचित है । कुटी आज रात तक तैयार कर देनी होगी ?''

विशालदेव की मुसकराहट तथा उसके इस प्रश्न ने कुमारगिरि के सारे शरीर में क्रोध की विद्युत् ही प्रवाहित कर दी, वे कांप उठे । उन्होंने तन-कर कहा—''नहीं, कुटी की कोई आवश्यकता नहीं । चित्रलेखा मेरी कुटी में रहेगी । समझा विशालदेव ! मेरी निर्बलता पर उपहास करनेवाले नवयुवक ! याद रखना, मैं तुम्हारा गुरु हूं और तुमसे ऊंचा हूं । मैं तुम्हे दिखाऊंगा कि

साधना और तपस्या में तपा हुआ व्यक्ति कितना बलवान हो सकता है।"

कुमारगिरि का रुद्र-रूप देखकर विशालदेव भयभीत हो गया, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा—"गुरुदेव! मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैं कुटी बनाने जा रहा हूं।"

"नहीं!" कुमारगिरि गरज उठे—"अब कुटी की कोई आवश्यकता नहीं विशालदेव! एक बार मैंने भ्रम में आकर तुम्हारे गुरु की हंसी उड़ाई थी, उसका दंड मिल रहा है। तुम्हारे गुरु ने तुमको यहां पर पाप का पता लगाने भेजा है, अब तुम्हें अवसर मिला है कि तुम पाप देखो और उस पर विजय पाना भी देखो। तुम जा सकते हो! संध्या-वंदन का समय हो चुका है!"

विशालदेव चला गया। कुमारगिरि ने चित्रलेखा से कहा—"देवि! जो कुछ हुआ, वह स्वप्न के समान है; मैं उस पर स्वयं ही विश्वास नहीं कर सकता! पर फिर भी जो होना था वह हो चुका, कभी-कभी डर लगने लगता है, ऐसा मालूम होने लगता है कि मैं आग से खेलने जा रहा हूं।"

चित्रलेखा के मुख पर मधुर मुसकराहट नाच उठी—"देव! मुझसे भय मत खाना! अपनी साधना और तपस्या में तुम मुझे कभी भी बाधा-रूप न पाओगे, इतना विश्वास दिलाती हूं। मैं तुमसे प्रेम करती हूं, और प्रेम का अर्थ होता है निःसीम त्याग; मैं उसी में सुखी होऊंगी, जिसमें तुम्हें सुख मिले।"

"तथास्तु!"— कुमारगिरि अपने आसन पर बैठ गए—"तुम्हें अपने लिए कुशासन तैयार करना होगा। कुश तुम विशालदेव से मांग सकती हो। मेरी संध्या की समाधि का समय हो गया।"—इतना कहकर कुमारगिरि ने अपने नेत्र बंद कर लिए।

बारहवां परिच्छेद

बीजगुप्त ने मृत्युंजय का अकारण ही अपमान किया था, उसने यह अनुभव किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्वेतांक बीजगुप्त के पास आया, बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! मृत्युंजय के भोज में मैंने संभवतः कुछ अनुचित बात कह दी थी; परन्तु मैं अभी तक नहीं समझ पा रहा हूं कि मैंने क्या अनुचित कहा। तुम वहां पर उपस्थित थे, तुम्हें सब बातें स्मरण होंगी!"

कुछ सोचकर श्वेतांक ने कहा—"स्वामी ने जो कुछ कहा, वह उचित ही कहा। रही अपमान करने की बात, वहां मैं भी इतना समझता हूं कि बातें

इतनी खुलकर हुईं कि आर्यश्रेष्ठ को अपने को अपमानित समझना असंभव बात नहीं है; पर उसकी चिंता ही क्या। सत्य सत्य है, एक-दूसरे के विरोधी सिद्धांत हो सकते हैं।"

"नहीं, यह तुम भूलते हो श्वेतांक। सत्य सत्य है; पर सत्य अप्रिय न होना चाहिए। जो कुछ मैंने कहा, वह किसी दूसरे ढंग से प्रिय रूप में कहा जा सकता था।"

बीजगुप्त को मृत्युंजय के अपमान का अधिक ध्यान न था, उसे खेद था यशोधरा को अपनी बातों से अकारण ही दुःख पहुंचाने पर। उसकी दृष्टि के आगे यशोधरा का चित्र नाच रहा था। यशोधरा प्रेम करने की प्रतिमा थी—उसका भोलापन, उसकी प्रशांत तथा सुधासिंचित आंखें—उसका लज्जा और तेज से विभूषित अति सुंदर मुख-मंडल, यह सब रह-रहकर बीजगुप्त के सामने नाच उठते थे, पर वह यशोधरा से प्रेम न कर सकता था, क्योंकि वह चित्रलेखा से प्रेम करता था। चित्रलेखा की मादकता यशोधरा में न थी। चित्रलेखा का हृदय यशोधरा में था या नहीं, इसका वह निर्णय कर सकता था। चित्रलेखा उसकी पत्नी न होते हुए भी पत्नी थी। नर्तकी होते हुए भी वह प्रेम कर सकती थी। धन के वास्ते नहीं, धन की चित्रलेखा के पास कमी न थी, केवल प्रेम के वास्ते। उसे वह रात याद हो आई जब चित्रलेखा से प्रथम बार उसका परिचय हुआ था। चित्रलेखा और यशोधरा में कोई समता न थी। चित्रलेखा ऊंची, बहुत ऊंची थी; वह आश्चर्य करने लगा कि वह यशोधरा के विषय में क्यों सोच रहा है। उसने श्वेतांक से कहा—"श्वेतांक, मेरा कर्तव्य है कि अपने कटु शब्दों के लिए मृत्युंजय से क्षमा-प्रार्थना करूं।"

"जैसी स्वामी की इच्छा!"

"पर मैं वहां नहीं जाना चाहता।"— बीजगुप्त यशोधरा को भूलना चाहता था—"मैं एक पत्र देता हूं, उसे मृत्युंजय को दे देना।"

"जैसी स्वामी की आज्ञा!"

बीजगुप्त ने मृत्युंजय को एक पत्र लिखा और वह पत्र श्वेतांक को दे दिया। श्वेतांक पत्र लेकर मृत्युंजय के यहां पहुंचा। प्रहरी से उसने पूछा—"आर्यश्रेष्ठ भवन में ही हैं?"

प्रहरी ने कहा—"वे कार्यवश कहीं गए हैं! क्या काम है?"

"उनके लिए एक पत्र लाया हूं?"

"मुझे पत्र दे दीजिए, मैं उन्हें दे दूंगा!"

"नहीं! यह पत्र मैं केवल उन्हीं को दे सकता हूं।"—श्वेतांक किंचित् रुका—"या उनकी पुत्री यशोधरा को!"—श्वेतांक के मुख से अचानक ही यह वाक्य निकल पड़ा।

प्रहरी ने यशोधरा को सूचना दी और उसने श्वेतांक को अतिथि-भवन में ले जाकर बिठला दिया। थोड़ी देर बाद यशोधरा ने वहां प्रवेश किया। श्वेतांक उसके अभिवादन को उठ खड़ा हुआ। श्वेतांक को देखकर यशोधरा ने बैठते हुए कहा—''कहिए! किस कारण आपने कष्ट उठाया है?''

''सामंत बीजगुप्त ने आपके पिता के नाम एक पत्र दिया है—उसी के वाहक-रूप में मैं देवि के सम्मुख उपस्थित हूं।''—श्वेतांक ने बीजगुप्त को स्वामी न कहना उचित समझा।

''पिताजी आते ही होंगे, आपको संभवतः अभी प्रतीक्षा में कुछ कष्ट होगा।'' — यशोधरा की बड़ी-बड़ी आंखें श्वेतांक की आंखों से मिलीं, पर उनमें संकोच न था। श्वेतांक कह उठा—''पाटलिपुत्र की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी देवी की उपस्थिति में बैठने में किसे कष्ट हो सकता है?''

यशोधरा इस प्रकार की भाषा सुनने की अभ्यस्त न थी, और विशेषतः एक ऐसे व्यक्ति से, जिससे उसका केवल कुछ घंटों, अथवा कुछ क्षणों का परिचय हो; पर फिर भी बात मीठी थी। यशोधरा की आंखें हर्ष-मिश्रित लज्जा से झुक गईं और उसके कपोलों की स्वाभाविक लालिमा दुगुनी हो गई। श्वेतांक उसका अतिथि था। उसका आदर करना यशोधरा का कर्तव्य था। उसने श्वेतांक से पूछा—

''आर्य बीजगुप्त को आपने पूर्ण रूप से जान लिया होगा।''

''हां! संसार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों में उनकी गणना करने में किसी को कोई आपत्ति न होनी चाहिए।''

''और नर्तकी चित्रलेखा के विषय में आपका क्या विचार है?''

''वे बहुत ऊंची कोटि की स्त्री हैं। मैं तो यहां तक कह सकता हूं कि वे देवी हैं। जिस मनुष्य ने चित्रलेखा को जान लिया, उसने सौंदर्य और सौंदर्य-जनित कर्तव्य को जान लिया।''

यशोधरा हंस पड़ी— ''मेरी धारणा तो फिर निर्मूल न थी— आर्य का नाम संभवतः श्वेतांक है।''

''देवि का अनुमान सत्य है।''

''आर्य श्वेतांक! एक बात और पूछूंगी। वास्तव में आपके गुरु ने पाप का पता लगाने के लिए आपको सामंत बीजगुप्त के पास भेजा है। और यदि भेजा है, तो क्या वास्तव में बीजगुप्त का व्यक्तित्व पाप का पता लगाने का उपयुक्त क्षेत्र है?''

श्वेतांक मुसकराया— ''देवि का कहना ठीक है कि मेरे गुरु ने पाप का पता लगाने के लिए मुझको आर्य बीजगुप्त के पास भेजा है। और रही आर्य बीजगुप्त के व्यक्तित्व से पाप का पता लगाने के उपयुक्त क्षेत्र होने की

बात, वहां मैं भी बड़े असमंजस में हूं। मैं यह भी बतला दूं कि योगी कुमारगिरि के पास मेरा गुरुभाई, जो कल उनके साथ भोज में आया था, पाप का पता लगाने के लिए भेजा गया है। यहां भी तुम्हें आश्चर्य होगा।"

वास्तव में यशोधरा चौंक पड़ी।

"पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है देवि! यह आवश्यक नहीं है कि जिनके पास हम भेजे गए हैं, वे ही पापी हों। बहुत संभव है कि उनके संपर्क में आनेवाले लोगों में पापी मिलें। दूसरी बात यह है कि पाप है क्या? उसको कौन जानता है। जिसको मैं पाप समझता हूं, उसको दूसरा व्यक्ति संभवतः पाप न माने और साथ ही बहुत-सी बातें, जिन पर हम ध्यान तक नहीं देते, बहुतों के लिए पाप हो सकती हैं।"

इस उत्तर से यशोधरा संतुष्ट न हो सकी– "आर्य श्वेतांक! मैं आपकी प्रशंसा करूंगी कि आप मनुष्य के गुणों को ही देखने में विश्वास करते हैं।"

इतने ही में आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय ने भवन में प्रवेश किया। श्वेतांक ने उठकर उनका अभिवादन किया, यशोधरा अंदर चली गई।

मृत्युंजय ने श्वेतांक को बैठने का आदेश करते हुए कहा– "क्या तुम बीजगुप्त के वही सेवक हो, जो कल उनके साथ था?"

"आर्यश्रेष्ठ का अनुमान ठीक है। स्वामी ने आर्यश्रेष्ठ के नाम एक पत्र दिया है।"

मृत्युंजय ने पत्र ले लिया। पत्र पढ़कर उनके मुख पर संतोष के भाव व्यक्त हो गए– "सामंत बीजगुप्त से कह देना कि उनके क्षमा-याचना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और उनकी ओर मेरी धारणा वैसी ही निर्मल तथा स्वच्छ है, जैसी पहले थी। एक बात और कह देना। यदि उनको कोई कार्य न हो. तो वे संध्या समय यहां चले आवें, और भोजन भी यहीं करें।" – कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा – "और श्वेतांक, तुम भी बीजगुप्त के साथ आमंत्रित हो।"

श्वेतांक का मुख प्रसन्नता से खिल गया– "आर्यश्रेष्ठ की आज्ञा का पालन होगा। यदि स्वामी आवेंगे, तो मैं भी अवश्य आऊंगा। यद्यपि बिना उनकी आज्ञा के मेरा यहां आना कहां तक उचित होगा, यह मैं नहीं कह सकता।"

मृत्युंजय हंस पड़े – "तुम शांत, गंभीर तथा कर्तव्यनिष्ठ नवयुवक हो, मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम्हारे वंश, तुम्हारे पिता का नाम और उनका निवास?"

"मैं सूर्यवंशी हूं, मेरे पिता का नाम विश्वपति है, तथा उनका निवास कौशल-प्रदेश है।"

"तुम्हारे पिता का नाम विश्वपति है, और उनका निवास कौशल है। क्या उन्होंने काशी में शिक्षा पाई थी?"

"आर्यश्रेष्ठ ठीक कहते हैं?"

''कितने आश्चर्य की बात है। विश्वपति मेरे गुरुभाई हैं। तुम्हारा स्वागत है, तुम मेरे पुत्र के समान हो।''

अपने पिता और मृत्युंजय के इस परिचय पर श्वेतांक को कितनी प्रसन्नता हुई, यह नहीं कहा जा सकता। श्वेतांक के हृदय में एक प्रकार की आशा उत्पन्न हो गई। वह सोचने लगा– ''यशोधरा का मेरे साथ विवाह हो सकना संभव है?''

''असंभव!'' श्वेतांक जानता था। उसके पिता का वैभव नष्ट हो चुका था, और इसीलिए उसके पिता ग्रामीण जीवन व्यतीत कर रहे थे। वह उच्च कुल का था, पर इससे क्या? मृत्युंजय उसके पिता से धन में श्रेष्ठ थे, वैभव में श्रेष्ठ थे और अधिक शक्तिशाली थे। विवाह में इन बातों की समता आवश्यक होती है। फिर भी आशा दब न सकी।

श्वेतांक को मौन देखकर मृत्युंजय ने कहा– ''वत्स श्वेतांक! मेरे भवन को तुम अपना ही समझो। मुझे आश्चर्य होता है कि विश्वपति ने तुम्हारे यहां होने की सूचना मुझे क्यों न दी?''

''मेरे पिता आजकल वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं– बहुत संभव है कि यह कारण रहा हो। अच्छा, तो आर्यश्रेष्ठ आज्ञा दें।''

भोजन का समय हो गया था – ''मेरे यहां इस समय भोजन करने में तो तुम्हें कोई संकोच न होगा?''

श्वेतांक ने मुसकराते हुए कहा – ''संकोच की कोई बात नहीं है आर्यश्रेष्ठ, पर मैं इस समय आर्य बीजगुप्त का सेवक हूं, बिना उनकी आज्ञा के मैं कोई काम नहीं कर सकता। अच्छा, तो अब आप मुझे आज्ञा दें, विलंब हो रहा है। आर्य बीजगुप्त मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।''

''साधुवाद! अपने कर्तव्य को तुम भली-भांति समझते हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम जा सकते हो, पर बीजगुप्त से तुम मेरी बात कहना न भूलोगे।''

श्वेतांक लौट आया। बीजगुप्त से उसने मृत्युंजय के यहां निमंत्रण की बात कही। बीजगुप्त कह उठा – ''मुझे निमंत्रण मिला है, पर क्या मेरा वहां जाना उचित होगा?''

इस निमंत्रण पर बीजगुप्त दोपहर-भर विचार करता रहा। उसका वहां जाना अनुचित क्यों था? बीजगुप्त के मन में यह प्रश्न उठा। वह यह तो कह सकता था कि उसका वहां जाना अनुचित है; पर वह कारण स्वयं ही न कह सकता था। बहुत तर्क-वितर्क के बाद उसने मृत्युंजय के यहां जाना निश्चित किया। संध्या के समय उसने श्वेतांक से कहा – ''श्वेतांक! मैं समझता हूं कि मुझे किसी भद्र पुरुष का निमंत्रण अस्वीकार न करना चाहिए!''– उसके मन में यशोधरा को एक बार फिर देखने की, उससे

बातचीत करने की अस्पष्ट भावना चक्कर काट रही थी।

रात्रि के समय बीजगुप्त श्वेतांक के साथ मृत्युंजय के यहां पहुंचा। आर्य मृत्युंजय के भवन में पिछली रात की-सी चहल-पहल न थी, वहां का वायुमंडल शांत था। मृत्युंजय ने बीजगुप्त का स्वागत किया। विश्राम-भवन में जाकर वे लोग बैठ गए। यशोधरा वहां पहले से ही बैठी हुई उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

''आर्य बीजगुप्त! उस पत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी।''— मृत्युंजय ने वार्तालाप आरंभ किया।

''आर्यश्रेष्ठ! अपनी भूल को स्वीकार करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।''

मृत्युंजय हंस पड़े— ''तुम्हारा सेवक श्वेतांक मेरे गुरुभाई विश्वपति का पुत्र है, मुझे आज यह विदित हुआ।''— इतना कहकर मृत्युंजय ने श्वेतांक की ओर देखा।

''किन्तु आर्यश्रेष्ठ! श्वेतांक मेरा सेवक नहीं, गुरुभाई है।''

''आर्य बीजगुप्त! आज आपको कुछ विलंब हो गया है।''

''हां, आज काशी से मेरे कुछ अतिथि आ गए थे।''

इस बार यशोधरा ने कहा — ''काशी तो बहुत सुंदर तथा प्राचीन नगरी है। क्या आप काशी हो आए है?''

बीजगुप्त हंस पड़ा— ''मेरे जीवन का सबसे सुंदर काल काशी में ही व्यतीत हुआ है। मेरे गुरु महाप्रभु रत्नांबर का निवास-स्थान पहले काशी में ही था। देवि यशोधरा, काशी तो यहां से निकट है, मैंने संपूर्ण उत्तर भारत का पर्यटन किया है।''

''तो फिर आपने हिमालय पर्वत के भी दर्शन किए हैं?''

''हां, हिमालय और हिंदूकुश पर्वतों को भी मैंने देखा है। प्राकृतिक छटा का पूर्ण रूप तो पर्वतों में ही मिलता है।''— इस बार बीजगुप्त ने मृत्युंजय से कहा — ''आर्यश्रेष्ठ, कितनी ही आश्चर्यजनक बातें मैंने वहां देखी हैं; पर एक घटना को मैं कभी नहीं भूल सका। उसे सुनकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।''

यशोधरा ने कौतूहलवश पूछा — ''क्या आप उस घटना को सुना सकते है?''

''अवश्य'' — बीजगुप्त ने आरंभ किया — ''कोई दस वर्ष की बात है। उन दिनों मैं विद्यार्थी था। महाप्रभु रत्नांबर के साथ मैं देश-यात्रा को निकला। बड़े-बड़े नगर, उपवनों को पार करते हुए हम दोनों गंगा के किनारे चलते-चलते हरिद्वार पहुंचे। वहां सम-भूमि समाप्त हो गई। मस्तक पर आकाश उठाए हुए पर्वत-शिखर हमारे सामने खड़े थे। मैंने

महाप्रभु रत्नांबर से पूछा – "अब आगे क्या है?"– उन्होंने कहा – "अज्ञात-प्रदेश!" गंगा के तट पर एक व्यक्ति बैठा हुआ था। उसने संभवतः महाप्रभु का कथन सुन लिया। उसने कहा – "क्या कहा? आगे अज्ञात-प्रदेश है? ठीक कहते हो; पर इतना मैं कह देना अपना कर्तव्य समझता हूं कि वही अज्ञात-देश देवताओं का निवास-स्थान है। इन्हीं पर्वत-प्रदेशों में कैलास है, इन्हीं पर्वतीय देशों में गंधर्व नृत्य करते हैं, अप्सराएं क्रीड़ा किया करती हैं।" – उस व्यक्ति की बात सुनकर महाप्रभु के मुख पर अविश्वास की मुसकान झलक उठी; पर अनुभवरहित युवा की कल्पना अविश्वास को न अपना सकी। मैंने कहा – "बहुत संभव है ऐसा ही हो! महाप्रभु! इन पर्वतों पर चढ़कर उस पर्वत-प्रदेश में चलने में क्या कोई आपत्ति है?" – "नहीं। यदि तुम चलना चाहते हो, तो मैं प्रस्तुत हूं।"

"हम दोनों और आगे बढ़े। उस प्रकृति-सौंदर्य की हमने कल्पना तक न की थी। वनों में रंग-विरंगे फूल खिले थे, जिससे पर्वतीय शीतल वायु अठखेलियां कर रहा था। पक्षी कलरव गायन कर रहे थे। चारों ओर शांति का साम्राज्य था। वहां कोलाहल न था, जनरव न था; केवल एक के ऊपर एक उठती हुई पर्वतमालाएं थीं। मार्ग में ग्राम पड़ते थे। उनके निवासी गौरवर्ण के थे, उनकी स्त्रियां सुंदरी थीं, वे रंग-विरंगे वस्त्र पहने थीं, वे हंसती थीं, और गाती थीं। उनमें लज्जा अथवा संकोच न था। मैं नवयुवक था, मैं उनके सौंदर्य पर मोहित हो गया। उन स्त्रियों के झुंड-के-झुंड मधुर गान गाते हुए चलते थे। मैं यद्यपि उनकी भाषा न समझ सकता था; पर यह अनुमान कर सकता था कि उनका मधुरगान कवित्वमय है, और उसका विषय प्रेम है। मेरे मन ने कहा – "क्या यही अप्सराओं का प्रदेश है?" हम और आगे बढ़े। ग्राम अब दूर-दूर और छोटे-छोटे मिलते थे। शीत अधिक तीव्र हो गया था, और फूल-फल भी कम मिलने लगे। एक प्रातः हमने सामने दूर पर एक सोने का पहाड़ देखा। मैं पागल-सा चिल्ला उठा – "गुरुदेव! सामने कुबेर का सुमेर पर्वत है।"– महाप्रभु मेरी मूर्खता पर हंसने लगे।– "वह हिमालय है। हिम पर सूर्य की किरणें चमक रही हैं, और इसीलिए तुम्हें स्वर्ण का भ्रम हो रहा है।"– मैं अपनी मूर्खता पर लज्जित हो गया। हम और ऊपर चढ़े। अब पृथ्वी स्थान-स्थान पर बरफ से ढंकी थी – हमारा शरीर ठिठुरा जा रहा था। महाप्रभु रत्नांबर ने कहा– "अब लौट चलें।"– पर मैंने साहस किया।– "नहीं महाप्रभु! उस हिम से ढंके हुए पर्वत के नीचे तक तो चलें ही।"– आगे बढ़कर हमें एक कुटी मिली। उस कुटी में उस समय केवल एक स्त्री बैठी हुई कुछ सोच रही थी। हम लोगों को देखकर उठ खड़ी हुई। उसने कहा – "अतिथियों का

स्वागत है।"– महाप्रभु ने उस स्त्री को बड़े ध्यान से देखा। उन्होंने धीरे से मेरे कान में कहा –"यह निरापद स्थान नहीं, यहां से लौट चलना चाहिए।"– स्त्री हंस पड़ी – "वृद्ध अतिथि का अनुमान सत्य है, पर जब यहां तक आए ही हो, तो एक बात तो जान लो, जिसको तुम जीवन-भर कभी न भूल सकोगे!"– स्त्री की इस बात से महाप्रभु चकित हो गए, पर उसके अनुरोध को टालना उन्होंने उचित न समझा। थोड़ी दूर चलकर हमने हिम की एक शिला पर एक योगी को बैठे हुए देखा। उसकी जटा उसके पैरों तक आ गई थी, नाखून सिंह के पंजों की भांति थे। वह एकटक, जिस ओर से हम लोग आ रहे थे, उसी ओर देख रहा था। हम लोगों ने जाकर उसे अभिवादन किया। उसने आशीर्वाद देकर हमें अपने पास बिठलाया! – "आज न जाने कितने समय बाद मैंने किसी पुरुष को देखा है!"– उसने एक ठंडी सांस ली। उसके मुख पर करुणा तथा विषाद के भाव व्यक्त थे! महाप्रभु ने उससे कहा – "देव! आप दुखी हैं।"

"हां" – उसने उत्तर दिया– "दुखी हूं और सुखी भी हूं।"– इतना कहकर उसने पीछे की ओर संकेत किया।

हम लोगों ने उठकर पीछे देखा, और भय से कांप उठे। पीछे रक्त का एक कुंड था, जिसमें सीढ़ियां लगी हुई थीं। उस कुंड से दुर्गंध आ रही थी। महाप्रभु ने योगी से पूछा – "आप यह स्थान त्याग क्यों नहीं देते?" उसने उत्तर दिया – "त्यागना चाहता हूं, पर त्याग नहीं सकता। न जाने कितनी बार इस स्थान को छोड़ने की बात सोचता हूं, पर सब व्यर्थ है। यह स्थान नहीं छूट सकता है – उफ!"

इसके बाद ज्ञान की बातें होती रहीं। उसने साधना तथा उपासना का महत्व हम लोगों को बतलाया। उस योगी का ज्ञान बहुत ऊंचा था। घंटों उस दुर्गंध को सहकर भी हम उसकी ज्ञान की बातें सुनते रहे। उस समय संध्या निकट आ रही थी। एकाएक योगी चिल्ला उठा – "समय आ गया।"– और वह उठकर तेजी के साथ कुंड की ओर भागा। हम लोग भी उसके पीछे दौड़े, केवल कौतूहलवश। योगी पागल-सा उस कुंड में कूद पड़ा। आश्चर्य की बात, उस कुंड में उस समय रक्त के स्थान में स्वच्छ तथा निर्मल जल था। उसके वे नारकीय जंतु सुंदर कमल-दलों में परिणत हो गए थे। हम लोग अवाक् रह गए। साथ ही हमने देखा कि उस कुंड में योगी के साथ एक स्त्री भी थी और वह स्त्री वही थी, जिसको हमने कुटी में देखा था। वे दोनों केलि कर रहे थे। स्त्री हंस रही थी। उसने पुकारकर हम लोगों से कहा– "मूर्खो! खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? आओ यहां स्नान करो और जीवन का सुख भोगो।" मेरे मन में इच्छा हुई कि स्नान करूं, और मैं अपने वस्त्र उतारने लगा। पर महाप्रभु ने मेरा हाथ पकड़कर जोर

से खींचा। न जाने उनमें कितना बल था कि लाख विरोध करने पर भी मैं अपने को मुक्त न कर सका। वे मुझे खींचकर ले चले। उस समय वे चल रहे थे, दौड़ रहे थे। कुटी को पार करते हुए हम लोग पुराने मार्ग से लौट आए। महाप्रभु ने मुझसे बाद में कहा – ''वत्स! परमेश्वर को धन्यवाद दो कि हम लोग बच आए।'' – उस दिन से कई वर्ष तक मेरे सामने उस स्त्री का चित्र नाचता रहा।''

यशोधरा ने पूछा – ''इसका रहस्य भी क्या कभी महाप्रभु ने आपको बतलाया?''

''नहीं! महाप्रभु ने केवल इतना ही कहा – ''संसार में कई ऐसी बातें हैं, जो समझ में नहीं आ सकतीं। उनमें एक वह भी थी।''

इसके बाद सब लोग भोजन-गृह में गए। आज यशोधरा के एक ओर बीजगुप्त और दूसरी ओर श्वेतांक था। भोजन करते हुए यशोधरा ने बीजगुप्त से कहा – ''आर्य, आपकी कहानी अपूर्व है। उसको सुनकर मेरे हृदय में न जाने कैसी हलचल मच गई। मैं भी चाहती हूं कि मैं ऐसी आश्चर्यजनक चीज देख पाती।''

बीजगुप्त ने हंसते हुए कहा– ''देवि! मनुष्य अनुभव प्राप्त नहीं करता, परिस्थितियां मनुष्य को अनुभव प्राप्त कराती हैं।''

श्वेतांक यशोधरा से बात करने का अवसर ढूंढ़ रहा था – ''देवि! अनुभव प्राप्त करने के लिए अभी समस्त जीवन पड़ा है।''

यशोधरा के मुख पर एक विचित्र प्रकार का भाव अंकित था– ''संभवतः! पर किसी के भी इस छोटे-से जीवन का प्रत्येक क्षण कितना मूल्यवान है। इस जीवन के इन क्षणों का व्यर्थ जाना क्या बुरा नहीं है?''

बीजगुप्त हंस पड़ा – ''हमारे प्रत्येक कार्य में अदृश्य का हाथ है। उसकी इच्छा ही सब कुछ है। और संसार में इस समय दो मत हैं। एक जीवन को हलचलमय करता है, दूसरा जीवन को शांति का केंद्र बनाना चाहता है। दोनों ओर के तर्क यथेष्ट सुंदर हैं। यह निर्णय करना कि कौन सत्य है, बड़ा कठिन कार्य है।''

श्वेतांक यह देख रहा था कि वह यशोधरा पर अपने व्यक्तित्व का इतना सुंदर प्रभाव नहीं डाल सकता था, जितना बीजगुप्त। उसने एक बार फिर साहस किया – ''देवि यशोधरा, मनुष्य को सुखी और संतुष्ट जीवन की आवश्यकता होते हुए भी उसमें हलचल का पुट होना ही चाहिए। प्रेम मनुष्य का निर्धारित लक्ष्य है। कंपन और कंपन में सुख, प्यास और तृप्ति– प्रेम का क्षेत्र यही है। जीवन में प्रेम प्रधान है। जीवन में आवश्यक है एक-दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना – एक-दूसरे से प्रगाढ़ सहानुभूति और एक-दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना ही प्रेम है, जीवन

का सर्वसुंदर लक्ष्य है।"

यशोधरा ने श्वेतांक को देखा – उसकी आंखें श्वेतांक की आंखों से मिल गईं। श्वेतांक का सारा शरीर पुलक उठा। कितनी देर तक यशोधरा श्वेतांक को देखती रही, यह नहीं कहा जा सकता, पर श्वेतांक के लिए वे थोड़े-से क्षण कितने मादक थे। बीजगुप्त हंस पड़ा – "यही जीवन है!"– उसने धीरे से कहा।

यशोधरा की दृष्टि एकाएक श्वेतांक पर से हट गई। उसका मुख पीला न पड़कर लाल हो गया। श्वेतांक ने घबड़ाकर आंखें नीची कर लीं।

तेरहवां परिच्छेद

यशोधरा में आकर्षण भी था–वह आकर्षण कितना सुंदर, कितना मधुर और कितना जीवनहीन! यशोधरा के पास बैठकर मनुष्य पवित्रता को देख सकता था, पवित्रता को प्राप्त कर सकता था और पवित्र हो सकता था। फिर भी बीजगुप्त को सुख न था–उसको प्रसन्नता न थी। यशोधरा के व्यक्तित्व में उसने एक ऐसे वातावरण का अनुभव किया, जिसका वह अभ्यस्त न था। यशोधरा की अभेद्य गंभीरता में जीवन की एक मौन पहेली छिपी थी–उसके स्पष्ट, निश्छल तथा कवित्वहीन वार्तालाप में उस साधना का समावेश था, जिसका बीजगुप्त केवल आदर कर सकता था, जिसको अपना नहीं सकता था।

यौवन हलचल चाहता है। पग-पग पर वह कठिनाइयों को ढूंढ़ता है और अपनाता भी है। यौवन अपना अस्तित्व स्पष्ट रखने का पक्षपाती है–अपने व्यक्तित्व को वह कहीं मिटाना नहीं चाहता। वह उसे कहीं पीछे भी नहीं फेंकना चाहता है। साथ ही यौवन अपने जीवन में केवल उस व्यक्ति को चाहता है, जो स्पष्ट हो, प्रभावशाली हो। कई भिन्न-भिन्न शक्तियों के संगठित होकर एक हो जाने को ही क्रांति कहते हैं; पर वहां पर उन शक्तियों का केवल संगठन ही होता है। वे शक्तियां पृथक् होती हैं–किसी भी समय उनका पार्थक्य अनुभव किया जा सकता है।

इसीलिए बीजगुप्त के हृदय में यशोधरा की स्मृति एक भयमिश्रित सुख–एक भ्रममिश्रित अनुराग–एक जीवनहीन प्रेम के रूप में थी।

यशोधरा एक प्रतिमा थी, जिसे हृदय-मंदिर में बिठलाकर पूजा जा सकता था; यशोधरा में नारीत्व के आदर्शवाद से युक्त पवित्रता थी।

यशोधरा धर्म के विश्वास की प्रतिमूर्ति थी। यशोधरा की आंखों की सुधा में शांति थी, शीतलता थी। और बीजगुप्त जीवन चाहता था, हलचल चाहता था, अपनी नसों में उष्ण रक्त का मादक प्रवाह चाहता था। इसीलिए बीजगुप्त अपने जीवन में यशोधरा को न चाहता था।

जिसने एक बार मदिरा पी ली—नहीं, जिसने एक बार मदिरा की मादकता को जान लिया, वह फिर मदिरा नहीं छोड़ सकता। बीजगुप्त चित्रलेखा से प्रेम करता था; चित्रलेखा को छोड़ देना उसके लिए असंभव था।

जिस समय बीजगुप्त अपने भवन पहुंचा, उसे चित्रलेखा का पत्र मिला। पत्र सादा था—छोटा था; पर उस छोटे-से पत्र में जीवन की एक लंबी कहानी थी, मनोविज्ञान का एक संपूर्ण ग्रंथ था। पत्र इस प्रकार था—

''पूज्य!

आज वह करने जा रही हूं, जिसकी कभी आशा तक न की थी। मैंने तुमसे प्रेम किया है—और अब भी करती हूं। प्रेम में त्याग की आवश्यकता होती है, उसी त्याग को कर रही हूं। मैंने तुम्हारे जीवन को निरर्थक बना दिया था—एक योग्य पुरुष को मेरे प्रेम ने कर्तव्यच्युत कर दिया था। उसका प्रतिकार करने जा रही हूं। मैंने अब भोग-विलास को तिलांजलि देकर संयम को अपनाना ही उचित समझा—और इसीलिए मैं योगी कुमारगिरि से दीक्षा ले रही हूं। तुम्हें विवाह करना ही होगा; यदि अपने लिए नहीं, तो मेरे अनुरोध से। मेरे रहते हुए तुम अपना विवाह न करोगे, यह मैं जानती हूं—इसलिए तुमसे अलग होना पड़ रहा है। रही मैं, मैं विधवा थी, प्रेमवश मैं कर्तव्यभ्रष्ट हुई; एक बार फिर अपना कर्तव्य पालन करूंगी—वैधव्य के संयम का पालन करने का प्रयत्न करूंगी।

तुम्हारी—चित्रलेखा''

बीजगुप्त ने पत्र पढ़ा – पढ़ते-पढ़ते उसके हाथ कांपने लगे। उसका मुख पीला पड़ गया। उसका हृदय धड़कने लगा। उसने पत्र श्वेतांक को दे दिया और अपना मुख ढंक कर वह अपने शयन-गृह में चला गया।

जिस बात के होने का बीजगुप्त को भय था, वह हो ही गई। चित्रलेखा और कुमारगिरि! कितना विचित्र योग था! बीजगुप्त कह उठा– ''इन दोनों का अधिक दिनों तक साथ रहना – यह असंभव है!''

पर इससे होता क्या था? संभव अथवा असंभव – बीजगुप्त को इससे क्या प्रयोजन था? बीजगुप्त के सामने यह प्रश्न था कि चित्रलेखा कुमारगिरि की ओर क्यों आकर्षित हुई, क्या प्रेम इसी को कहते हैं? क्या आत्मा का संबंध भी अस्थायी होता है? क्या चित्रलेखा का यह वाक्य ठीक था – ''आत्मा का संबंध अनादि नहीं है बीजगुप्त!''

पर यही बात कब निश्चित थी कि चित्रलेखा ने बीजगुप्त से प्रेम करना छोड़ दिया था – पत्र तो यह न कहता था। पत्र कुछ दूसरी ही कथा कहता था; वह कहता था कि चित्रलेखा ने प्रेम के सर्वोच्च आदर्श, त्याग तथा आत्म-बलिदान को अपनाया है। चित्रलेखा ने बीजगुप्त को छोड़ा, बीजगुप्त को सुखी बनाने के लिए! बीजगुप्त का हृदय उसके चित्रलेखा पर अविश्वास को धिक्कारने लगा। चित्रलेखा देवी थी। पर उसने भूल की – भयानक भूल की। बीजगुप्त के जीवन को सुखी न बनाकर उसने जीवन को दुखी बना दिया था। बीजगुप्त के लिए विवाह करना असंभव था – वह केवल एक स्त्री से प्रेम करता था – वह चित्रलेखा थी, और विवाह और प्रेम में गहरा संबंध है।

बीजगुप्त सो न सका, वह उठा; उस समय अर्धरात्रि बीत चुकी थी। वह अपने भवन के बाहर निकला और कुमारगिरि की कुटी की ओर पैदल ही चल दिया।

कुमारगिरि की कुटी में प्रकाश हो रहा था। कुमारगिरि अपने आसन पर ध्यानावस्थित बैठे थे – चित्रलेखा एक कोने में कुशासन पर पड़ी सो रही थी। बीजगुप्त ने चित्रलेखा को वैभव की चमक में देखा था, शांति की छाया में नहीं। इस बार उसने नर्तकी को शांति की छाया में देखा। चित्रलेखा के शरीर पर आभूषण न थे, केसर का लेप न था, उतावलापन न था। उसके मुख पर शांति की एक मीठी मुस्कान शोभित थी; वह संभवतः अपने स्वप्न-लोक में शांति की देवी के चरणों पर लेटी हुई थी। बीजगुप्त चित्रलेखा के सिरहाने बैठ गया। एकटक वह चित्रलेखा को देखने लगा।

प्रातः हो गया। कुमारगिरि ने समाधि तोड़ी और चित्रलेखा ने अपने नेत्र खोले। दोनों ने एक साथ ही बीजगुप्त को देखा और दोनों एक साथ कह उठे– "अरे बीजगुप्त!"

कुमारगिरि के मुख पर आश्चर्य था।

चित्रलेखा के मुख पर भय था।

बीजगुप्त ने कुमारगिरि को प्रणाम किया – उसने चित्रलेखा को भी प्रणाम किया। कुमारगिरि ने आशीर्वाद दिया, चित्रलेखा ने अपने नेत्र बंद कर लिए। बीजगुप्त ने धीरे से कहा – "चित्रलेखा!"

"बीजगुप्त!"

बीजगुप्त बहुत कुछ कहने आया था; पर वह सब कुछ भूल गया। बहुत साहस करके उसने कहा – "क्या तुमने निर्णय कर लिया?"

चित्रलेखा का मस्तक अपराधिनी की भांति झुक गया, उसके नेत्र से दो आंसू गिर पड़े, उसने धीरे से कहा – "बीजगुप्त! तुम जो कुछ देख रहे हो, यही मेरा अंतिम निर्णय है।"

"पर इस निर्णय पर फिर से विचार करने का तुमको अधिकार प्राप्त है। निर्णय करने के पहले क्या तुम्हें मुझसे पूछना आवश्यक न था? क्या तुमने मुझको अपने जीवन से इतना पृथक् समझा कि तुमने मुझसे अपने हृदय की बात बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत की? चित्रलेखा! प्रेम एक-दूसरे के भेदभाव को नहीं देखता; प्रेम दो हृदयों की अभिन्नता का द्योतक है। तुम समझती हो कि तुम अपने इस निर्णय से मुझे विवाह के लिए बाध्य कर सकोगी; पर तुम्हारी धारणा गलत है। तुम अपने इस निर्णय से मुझे सुखी न बना सकोगी – इतना विश्वास रखना। मैंने अपने जीवन में केवल तुमसे प्रेम किया, और साथ ही तुम्हारे सिवा मैं किसी से प्रेम नहीं कर सकता। मेरा विवाह असंभव है।"

चित्रलेखा बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह उठ खड़ी हो और बीजगुप्त के साथ चल दे, पर एकाएक वह रुक गई। वह बहुत दूर चली आई थी, उसका पीछे जाना असंभव था। बीजगुप्त के चरणों पर वह सिसक-सिसक कर रोने लगी – बीजगुप्त ने उठा लिया। शांत होकर चित्रलेखा ने कहा– "बीजगुप्त! तुम पूज्य हो; तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो। मैं तुम्हें जानती हूं; पर साथ ही मैं यह भी जानती हूं कि मैंने तुमसे प्रेम करके तुम्हारे जीवन को निरर्थक बना दिया है। बीजगुप्त, तुम्हारा विवाह होना ही चाहिए– तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझे सुखी बनाना तुम्हारा कर्तव्य है। मुझे तब तक सुख न होगा, जब तक मैं तुम्हें विवाहित न देखूंगी और तुम्हारी संतान से माता न कहलाऊंगी। तुम विवाह कर लो; और यह याद रखना बीजगुप्त कि मैं तुमसे सदा प्रेम करती रहूंगी। क्या प्रेम का प्रधान अंग भोग-विलास ही है, क्या बिना भोग-विलास के प्रेम असंभव है? मैं तुमसे इस समय केवल शारीरिक संबंध तोड़ रही हूं; इसकी अपेक्षा हमारा आत्मिक संबंध और दृढ़ हो जायगा।"

बीजगुप्त ने केवल इतना ही कहा – "चित्रलेखा? फिर सोच लो! तुम मुझसे जो कुछ करने को कह रही हो, वह असंभव है।"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त के गले में हाथ डालते हुए कहा – "बीजगुप्त! कुछ दिनों तक हम दोनों अलग रहकर देखें, शायद तुम कुछ दिनों के बाद विवाह करने को प्रस्तुत हो जाओ। क्या प्रेम में वियोग नहीं होता? उस वियोग को ही हम थोड़ा-सा सहन करें!"

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ – "जो कुछ कहना था वह कह चुका, मानना और न मानना तुम पर निर्भर है। जैसा तुम चाहती हो, वैसा ही सही, पर थोड़े दिनों के बाद ही तुमको यह स्पष्ट हो जायगा कि तुम गलती कर रही हो!"– इतना कहकर वह वहां से चल दिया। चित्रलेखा उसके साथ उसे राजमार्ग तक पहुंचाने के लिए हो ली। राजमार्ग पर वह रुकी। उसने

बीजगुप्त का चुंबन लिया। बीजगुप्त ने उस चुंबन में इतनी मादकता देखी, इतना गहन प्रेम देखा, जितना कई वर्षों से उसने अनुभव न किया था। बिदा होते हुए चित्रलेखा ने बीजगुप्त का चरण पकड़ कर कहा– "बीजगुप्त! संभवतः मैं अनुचित कर रही हूं – उसके लिए क्षमा करना!"

बीजगुप्त को बिदा करके चित्रलेखा कुटी में लौट आई। उस समय कुमारगिरि कुछ सोच रहे थे। चित्रलेखा को उन्होंने आसन पर बैठने का आदेश देते हुए पूछा – "चित्रलेखा! तुमने मुझसे कहा था कि तुम मुझसे प्रेम करती हो! क्या यह ठीक था?"

चित्रलेखा ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा – "हां! पर उससे क्या?"

"और तुमने अभी बीजगुप्त से कहा कि तुम उससे प्रेम करती हो, और बराबर प्रेम करती रहोगी!"

"हां, यह भी ठीक है!"

"पर क्या तुम्हारा दो व्यक्तियों से एक साथ प्रेम करना संभव है?" कुमारगिरि के प्रशांत मुख-मंडल पर अविश्वास की एक हल्की छाप थी।

"क्या आप समझते हैं कि यह असंभव है? गुरुदेव, पुरुष दो विवाह कर सकता है, और वह दोनों पत्नियों से प्रेम कर सकता है; फिर स्त्री क्यों ऐसा नहीं कर सकती। स्त्री अपने पति से उतना ही प्रेम कर सकती है, जितना अपने पुत्र से । आत्मिक संबंध कई व्यक्तियों से एक साथ संभव है।"

"चित्रलेखा! या तुम मुझे धोखा देना चाहती हो या बीजगुप्त को, और या अपने ही को।"

"मैं आपको धोखा नहीं दे रही हूं – इतना विश्वास रखिए, गुरुदेव। बहुत संभव है कि मैं बीजगुप्त को धोखा दे रही हूं या अपने ही को।"

"नहीं चित्रलेखा! एक बार फिर अच्छी तरह से सोच लो। मेरे साथ रहकर तुम बीजगुप्त से प्रेम न कर सकोगी, इतना निश्चय समझो। मेरे साथ रहकर तुम्हें संसार के ऊपर उठना पड़ेगा। मेरे पास तपस्या और साधना का शुष्क क्षेत्र है; हृदय की दुर्बलता का यहां काम नहीं है। मैं तुमको समय देता हूं कि तुम एक बार फिर सोच लो!"

"सोच लिया है गुरुदेव, अच्छी तरह से सोच लिया है। मैं जैसा तुम कहोगे वैसा ही करूंगी; तुम्हारे कहने से मैं ममत्व तक छोड़ने को तैयार हूं, संसार तो फिर भी सरल है!"

कुमारगिरि चित्रलेखा को समझ न सके। चित्रलेखा में एक असाधारण व्यक्तित्व था, और वह व्यक्तित्व कितना प्रभावशाली था! कुमारगिरि के हृदय में एक बार फिर यह विचार आया कि वे चित्रलेखा को दीक्षा देने से इनकार कर दें। उन्होंने चित्रलेखा से कहना आरंभ कर दिया–"देवि चित्रलेखा! मैं तुम्हें समझने में असमर्थ हूं; तुम्हारा व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व

से नीचा नहीं है। इसलिए दीक्षा देना मुझे कहां तक उचित होगा, इसका निर्णय करना होगा। जब तक मैं इसका निर्णय न कर लूं...''—

कुमारगिरि का वाक्य पूरा न हो पाया था कि विशालदेव ने कुटी में प्रवेश किया। विशालदेव को देखकर कुमारगिरि रुक गए। अपना वाक्य पूरा न कर सके। विशालदेव ने कुमारगिरि के चरण छुए, इसके बाद उसने चित्रलेखा को अभिवादन किया। विशालदेव इसके बाद चला गया।

विशालदेव के जाने के बाद कुमारगिरि हंस पड़े—''भगवान् का यही आदेश मालूम होता है कि मैं तुम्हें दीक्षा दूं, तुम्हें अपने साथ रखूं और अपनी परीक्षा दूं। नर्तकी, अभी मैंने जो कुछ कहा, उस पर ध्यान न देना।''

चौदहवां परिच्छेद

दिन के बाद रात, और रात के बाद दिन।

सुख के बाद दुःख, और दुःख के बाद सुख।

बिना रात के दिन का कोई महत्व नहीं है, और बिना दिन के रात्रि का कोई महत्व नहीं। बिना दुःख के सुख का कोंई मूल्य नहीं है, और बिना सुख के दुःख का कोई मूल्य नहीं।

यही परिवर्तन का नियम है। संसार परिवर्तनशील है। मनुष्य उसी संसार का एक भाग है। बीजगुप्त मनुष्य था—उसने सुख देखा था, उसके लिए दुःख को भी जानना आवश्यक था। पर बीजगुप्त अपने दुःख के भार से विचलित हो उठा। जिस बात की उसने कल्पना तक न की थी, वही हो गई। उसे आश्चर्य यह था कि वह जीवित क्यों है। बीजगुप्त के लिए उसका जीवन भार हो गया।

फिर भी मनुष्य सुख और दुःख सहने के लिए बनाया गया है; किसी एक से मुख मोड़ लेना कायरता है। बीजगुप्त इसका अनुभव करता था। चित्रलेखा के वियोग के दुःख को उसने साहसपूर्वक सहन करना ही निश्चित किया।

एक बाधा थी। पाटलिपुत्र में रहते हुए उसको चित्रलेखा से मिलने का अवसर मिल सकेगा; फिर वियोग की तपस्या का मूल्य ही क्या?

इससे भी बड़ी एक दूसरी बात थी। अन्य सामंतगणों को जब यह मालूम हो जायगा कि चित्रलेखा बीजगुप्त को छोड़कर साधना में रत हो गई है, तो वह उनको किस प्रकार मुख दिखला सकेगा?

तीसरी बात बहुत स्पष्ट थी। क्या यशोधरा उसके प्रेम को प्रभावित कर

सकती है?

बीजगुप्त दोपहर-भर इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता रहा। पर बात जितनी ही सुलझाई जाती थी, उतनी ही उलझती चली जाती थी। अंत में वह ऊब उठा। उस बात पर अधिक सोचने से उसके हृदय में एक दुःसह पीड़ा होने लगती है। संध्या के समय उसने श्वेतांक से कहा—"श्वेतांक! मेरा एक प्रस्ताव है।"

"वह क्या?"

"हम लोग काशी चलें—कुछ दिनों तक देश-पर्यटन करने की मेरी इच्छा है।"

"इतनी जल्दी!"—श्वेतांक ने आश्चर्य से पूछा। यशोधरा से अपने बढ़ते हुए प्रेम को वह पुष्ट करना चाहता था, और इसके लिए श्वेतांक को पाटलिपुत्र में रहना आवश्यक था—"दस-पांच दिन हम लोग क्या अभी नहीं ठहर सकते? प्रबंध करने को बहुत कम समय है।"

बीजगुप्त ने शुष्क भाव से उत्तर दिया—"नहीं, परसों ही चलना पड़ेगा, प्रबंध तो क्षणों में होगा। मेरी तथा अपनी यात्रा का प्रबंध करना पड़ेगा।"

"जैसी स्वामी की आज्ञा।"

श्वेतांक रात-भर जागता रहा। बीजगुप्त का यह निर्णय उसे अच्छा न लगा, पर वह कर ही क्या सकता था। उसने सोचा कि वह बीजगुप्त के साथ चलने से इनकार कर दे, पर इसका उसे साहस न पड़ा। इनकार करना उसकी नीचता होगी, उसका हृदय यह कहता था। प्रातःकाल उठकर उसने बीजगुप्त से कहा—"आर्य, आपकी आज्ञा चाहता हूं कि मैं आर्य मृत्युंजय से मिल आऊं।"

कारण जानते हुए भी बीजगुप्त ने कहा—"क्यों?"

"बाहर जा रहा हूं, अधिक दिनों तक बाहर रहने की संभावना है। उनसे बिदा मांगने जा रहा हूं।"

"तुम जा सकते हो।" — बीजगुप्त मन-ही-मन मुसकराया। एक प्रेम करने पर पछता रहा था, दूसरा प्रेम करने को उत्सुक था।

श्वेतांक मृत्युंजय के यहां पहुंचा। मृत्युंजय बाहर गए थे। श्वेतांक ने यशोधरा को अपने आने की सूचना दिलवाई।

विश्राम-भवन में यशोधरा श्वेतांक से मिली। अभिवादन करके दोनों बैठ गए और थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे। श्वेतांक ने आरंभ किया—"देवि! कल आर्य बीजगुप्त के साथ मैं पाटलिपुत्र छोड़ रहा हूं। इसलिए आज तुम लोगों से बिदा मांगने आया हूं। संभवतः अधिक दिनों तक बाहर रहना पड़े।"

श्वेतांक यशोधरा के मुख को देख रहा था; पर यशोधरा के मुख पर

कोई भाव-परिवर्तन न हुआ—''क्या बीजगुप्त बाहर जा रहे हैं; पर कल तो आर्य बीजगुप्त ने हम लोगों से अपने पाटलिपुत्र से जाने की कोई बात नहीं कही थी !''

श्वेतांक को यशोधरा की अपनी ओर यह उदासीनता बुरी लगी—वह तिलमिला उठा—''हां देवि ! चित्रलेखा ने आर्य बीजगुप्त का साथ छोड़कर योगी कुमारगिरि से दीक्षा ले ली !''

इस बार यशोधरा चौंक उठी—''क्या कहा ! चित्रलेखा नें विराग ग्रहण कर लिया है ? बड़े आश्चर्य की बात है। हां, आर्य बीजगुप्त को इससे अवश्य दु:ख हुआ होगा।''— यशोधरा ने कुछ देर तक मौन रहकर फिर कहा—''मैं चित्रलेखा से मिलते ही जान गई थी कि वह देवी है, आर्य बीजगुप्त के लिए वह सबसे बड़ा त्याग कर सकती है।''

श्वेतांक अपने प्रहार से स्वयं ही घायल हुआ, उसकी प्रतिहिंसा भड़क उठी—''और आर्य बीजगुप्त चित्रलेखा को छोड़कर दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते, मैं उन्हें जानता हूं, इसलिए अपना हृदय बहलाने वे बाहर जा रहे हैं। उनका दु:ख इतना प्रबल है कि यदि वे बाहर न जाकर पाटलिपुत्र में रहेंगे, तो बहुत संभव है, वे आत्महत्या कर लें।''

इस बार यशोधरा का मुख पीला पड़ गया – ''ठीक कहते हो श्वेतांक ! आर्य बीजगुप्त को मैं भी कुछ-कुछ समझ सकी हूं और मैं तुम्हारी बात में सार देखती हूं। जितने उच्च कोटि के मनुष्य आर्य बीजगुप्त हैं, उसको देखते हुए मैं उनको दोष नहीं दे सकती। इस बात से उन पर मेरी श्रद्धा और बढ़ गई।''

श्वेतांक क्रोध से पागल हो गया – ''यशोधरा ! एक नर्तकी के प्रेम में इतना पागल हो जाना, आर्य बीजगुप्त के लिए या किसी अन्य पुरुष के लिए कहां तक उचित है, यह अभी नहीं जान सका हूं। दूसरी बात और है। क्या दु:ख पड़ने पर इतना अधीर हो जाना, मनुष्य में एक निर्बल व्यक्तित्व का द्योतक नहीं है ?''

यशोधरा श्वेतांक के इस अकारण क्रोध का कारण न समझ सकी, उसने गंभीरतापूर्वक कहा – ''आर्य श्वेतांक ! बहुत संभव है, जो कुछ तुम कहते हो वह उचित हो, मैं तुम्हारी बात का खंडन नहीं करती; पर इतना अवश्य कहूंगी कि इसमें बीजगुप्त का कोई दोष नहीं है। देवि चित्रलेखा आर्य बीजगुप्त की दृष्टि में और उनके जीवन में नर्तकी न थीं, वे उनकी पत्नी के तुल्य थीं। इतना मैं जानती हूं, तुम जानते हो और सारा विश्व जानता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में कमजोरियां होती हैं, मनुष्य पूर्ण नहीं है। उन कमजोरियों के लिए उस व्यक्ति को बुरा कहना और शत्रु बनाना उचित नहीं; क्योंकि इस प्रकार एक मनुष्य किसी व्यक्ति का मित्र नहीं हो सकता।

संसार के प्रत्येक व्यक्ति को वह बुरा कहेगा, और प्रत्येक व्यक्ति उसका शत्रु हो जायगा। फलतः उसका जीवन भार हो जायगा। मनुष्य का कर्तव्य है, दूसरे की कमजोरियों पर सहानुभूति प्रकट करना।"

श्वेतांक की विरोध की भावना ने उसका सारा ज्ञान ढंक लिया था – "सहानुभूति और दया का कर्तव्य में कोई स्थान नहीं। कमजोरी की निंदा करके व्यक्ति से उन कमजोरियों को दूर करना उचित होता है।"

यशोधरा हंस पड़ी – "मनुष्य को पहले अपनी कमजोरियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। आर्य श्वेतांक, दूसरों के दोषों को देखना सरल होता है, अपने दोषों को न समझना संसार की एक प्रथा हो गई है। मनुष्य वही श्रेष्ठ है, जो अपनी कमजोरियों को जानकर उनको दूर करने का उपाय कर सके।"

यशोधरा का अंतिम वाक्य श्वेतांक के हृदय में तीर-सा चुभ गया। वह यह निर्णय न कर सका कि यशोधरा ने उसी पर वह व्यंग किया था। पर यशोधरा ने जो कुछ कहा था – वह ठीक था, वह बीजगुप्त पर लागू होता था; क्योंकि बीजगुप्त अपनी कमजोरियां जानता था और उनको दूर करने का प्रयत्न कर रहा था। वह वाक्य श्वेतांक पर लागू होता था, क्योंकि वह दूसरों के दोषों की मीमांसा कर रहा था, प्रतिहिंसा के अपने भाव को बुरा न समझता था। उसका मुख पीला पड़ गया। काँपते हुए धीमे स्वर में कहा – "आर्य बीजगुप्त को तुम्हारे सामने बुरा कहना अनुचित था – मैं क्षमा चाहता हूं, और आगे से मैं अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करूंगा।"

"आर्य बीजगुप्त को तुम्हारे सामने बुरा कहना अनुचित था।" – यशोधरा क्रोध से लाल हो गई। पर एक क्षण में ही उसे श्वेतांक के अकारण क्रोध का कारण मालूम हो गया, और दूसरे ही क्षण उसका मुख सफेद हो गया – "आर्य श्वेतांक! तुम बड़े भ्रम में हो। मैं आर्य बीजगुप्त से प्रेम नहीं करती – तुमसे यह स्पष्ट कह देना ही उचित होगा" – यशोधरा की आंखों में आंसू भर आए – उसने अपना मुख अंचल में छिपा लिया।

श्वेतांक के मुख से यह वाक्य अचानक ही, बिना उसकी इच्छा से निकल पड़ा था, और इसके लिए उसे दुःख था; पर बात मुख से निकल ही गई, उसको वह लौटा न सकता था। उसने यशोधरा के सामने हाथ जोड़कर कहा – "देवि यशोधरा! मुझे क्षमा करना। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया – पर उस समय मैं अपने आपे में न था। तुम शायद नहीं जानतीं कि मैं इतना कटु क्यों हो गया।"

"क्यों?" – कारण का अनुमान करते हुए भी, उसको स्पष्ट रूप से सुनने की लालसा से शायद यशोधरा ने पूछा।

''इसलिए कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं।''

यशोधरा ने श्वेतांक को देखा, उसके निःसंकोच नेत्र श्वेतांक के नेत्रों से मिल गए – ''बड़े आश्चर्य की बात है आर्य श्वेतांक!''

इस बात ने श्वेतांक को निस्तेज कर दिया। इस बात में कितनी गूढ़ता थी, कितना भयानक सत्य इस छोटे-से वाक्य में छिपा था – यशोधरा श्वेतांक से प्रेम न करती थी। श्वेतांक कह उठा – ''मैं जानता हूं कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो देवि, पर मैं तो तुमसे प्रेम करता हूं। मैं यह तुमसे कहता भी न, क्योंकि प्रेम किया जाता है, कहा नहीं जाता है; पर क्या करूं! इस समय प्रसंग ही ऐसा आ गया। अपनी कटुता के लिए और अपने दुःसाहस के लिए मैं तुमसे क्षमा मांगता हूं!''

यशोधरा उठ खड़ी हुई – ''क्षमा-याचना की कोई आवश्यकता नहीं, आर्य श्वेतांक! मैं तुम्हें दोष नहीं देती। जीवन में ऐसी बातें तो नित्यप्रति हुआ करती हैं, कहां तक क्षमा-याचना करते फिरोगे? अच्छा अब मैं जाती हूं, देखूं कि पिताजी आ गए।''

यशोधरा चली गई। श्वेतांक ने अब अनुभव किया कि उसने एक बहुत बड़ी भूल की। वह मिलने आया था यशोधरा से – भाग्यवश यशोधरा से बातचीत भी एकांत में हो सकी, और काफी अधिक, शायद इससे भी अधिक हो सकती – यदि वह अपनी मूर्खता से यशोधरा को क्रोधित न कर देता। उसे अपनी मूर्खता पर क्रोध आ रहा था। उसने सोचा कि अब उसका वहां बैठना अनावश्यक है – जिस काम के लिए वह आया था, वह बनने की जगह बिगड़ गया। वह उठा; वह बाहर चलने ही वाला था कि यशोधरा के साथ मृत्युंजय ने कमरे में प्रवेश किया। मृत्युंजय को देखकर वह रुक गया, और उसने मृत्युंजय को अभिवादन किया।

मृत्युंजय ने श्वेतांक को बैठने का आदेश देते हुए कहा – ''बैठो वत्स श्वेतांक, मैंने सुना है कि तुम आर्य बीजगुप्त के साथ देश-भ्रमण करने जा रहे हो – क्या यह ठीक है?''

श्वेतांक ने मुसकराने का प्रयास करते हुए उत्तर दिया – ''आर्यश्रेष्ठ! कल ही हम लोग चले जावेंगे।''

''कहां जाने का विचार है?''

''काशी!''

''और लौटने का कब तक विचार है?''

''यह नहीं कह सकता – यह तो पूर्णतः आर्य बीजगुप्त पर निर्भर है।''

यशोधरा ने अपने पिता से कहा – ''पिताजी, आप कभी देश-भ्रमण को क्यों नहीं निकलते? मैं कभी काशी नहीं गई, इस अवसर पर आर्य बीजगुप्त के साथ आप भी काशी हो आवें।''

बात बुरी न थी, और पाटलिपुत्र से काशी निकट भी है। मृत्युंजय ने कहा – "पुत्री, इतनी जल्दी कैसे यह संभव हो सकता है?"

"सब कुछ संभव है। पिताजी, यदि आप आज्ञा दें, तो चलने का प्रबंध आज संध्या के समय तक हो सकता है।"

मत्युंजय हंस पड़े – "यशोधरा, तुम्हारा यह पहला साग्रह अनुरोध है, उसे टालना मेरी सामर्थ्य के बाहर है; यदि प्रबंध कर सकती हो, तो कर लो, और देखो, मुझे तुम कोई कष्ट न देना।"

श्वेतांक का खिन्न मन और भी खिन्न हो गया। अवश्य ही यशोधरा बीजगुप्त से प्रेम करती थी, तभी तो वह इतनी जल्दी काशी चलने को तैयार हो गई, पर श्वेतांक ने अपने हृदय को यह समझाकर शांत किया कि बीजगुप्त तो यशोधरा से प्रेम नहीं करता है; इतने दिनों तक साथ रहकर यशोधरा यह समझ जायगी कि कौन व्यक्ति उससे प्रेम करता है।

यशोधरा ने श्वेतांक से कहा – "आर्य श्वेतांक, हम लोग भी तुम्हारे साथ चलेंगे – यह याद रखना और आर्य बीजगुप्त से भी कह देना!"

मृत्युंजय ने हिचकिचाते हुए कहा – "यशोधरा! पहले प्रबंध तो कर लो! यदि कल तक तुम प्रबंध न कर सकी, तो आर्य बीजगुप्त का एक दिन यों ही व्यर्थ जायेगा।"

"प्रबंध न कर सकी? कैसी बात कर रहे हैं पिताजी! आर्य श्वेतांक, हम लोग अवश्य चलेंगे।"

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ – "तो फिर आज्ञा चाहता हूं। आर्यश्रेष्ठ! मैं आर्य बीजगुप्त से यह कह दूंगा"– इस बार उसने यशोधरा से कहा – "देवि! यदि प्रबंध में कुछ कष्ट हो, तो मैं सेवा करने को प्रस्तुत हूं – संध्या समय मैं आ सकता हूं।"

यशोधरा हंस पड़ी – "धन्यवाद आर्य! संध्या समय जब आप आवेंगे, तो यदि कोई कार्य आपके योग्य होगा, तो बतलाऊंगी।"

श्वेतांक चला गया। जाकर उसने बीजगुप्त से कहा – "स्वामी! आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय अपनी कन्या के साथ कल काशी की यात्रा करना चाहते हैं, उन्होंने आपसे कहलाया है कि यदि यात्रा साथ हो, तो अच्छा हो।"

बीजगुप्त इस प्रस्ताव के लिए तैयार न था। जिन कारणों से वह देश-यात्रा करना चाहता था, उनमें से एक तो उसके साथ ही चल रहा था, पर अब हो ही क्या सकता था! बीजगुप्त ने अनमने भाव से उत्तर दिया – "अच्छी बात है!"

पन्द्रहवां परिच्छेद

यशोधरा ने अपना कथन पूरा किया। उसने अपने चलने का प्रबंध कर लिया। दूसरे दिन सब लोगों ने काशी को प्रस्थान कर दिया।

उस समय संध्या हो गई थी। ग्रीष्म ऋतु की रात सुहावनी होती है; पर बीजगुप्त के लिए वह रात सुहावनी न थी। चतुर्दशी का चांद पूरब दिशा के क्षितिज पर जल रहा था, और बीजगुप्त के हृदय में एक ज्वाला जल रही थी। दास और दासियों के झुंड-के-झुंड मशाल हाथों में लिए हुए साथ थे – मशाल के उन शोलों में बीजगुप्त ने अपने हृदय में जलते हुए शोलों का प्रतिबिंब देखा। वह मौन था।

बीजगुप्त के रथ पर बीजगुप्त था और श्वेतांक भी। मृत्युंजय के साथ यशोधरा थी।

आधी रात बीत चुकी थी। चांदनी छिटक रही थी। मार्ग के समीपवर्ती उद्यानों से बेला और चमेली की भीनी-भीनी सुगंध चारों ओर फैल रही थी। श्वेतांक ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा – "क्या रात को विश्राम करना उचित न होगा?"

बीजगुप्त उस समय कुछ सोच रहा था। क्या सोच रहा था, यह वह स्वयं ही न जानता था। एक के बाद एक अनेक विचार उसके मस्तिष्क में उठते थे और लोप हो जाते थे। उस मानसिक अवस्था में उसे समय का कुछ भी ज्ञान न हो सका था। उसी समय मृत्युंजय का रथ उसके रथ के निकट आ गया। यशोधरा ने कहा – "आर्य बीजगुप्त! क्या विश्राम करना उचित होगा?"

बीजगुप्त चौंक उठा – उसने आकाश की ओर देखा। चंद्रमा आकाश के पूर्वी भाग को छोड़कर पश्चिमी भाग की ओर बढ़ गया था। उसने श्वेतांक से कहा – "श्वेतांक! रथ रोक दो, और देखो किसी समीपवर्ती बाटिका में ठहरने का कोई प्रबंध हो सकता है?"

रथ रुक गया और बीजगुप्त के रथ रोकने के साथ ही अन्य रथ भी रुक गए। श्वेतांक रथ से उतरकर बाटिका की तलाश में चला गया। बीजगुप्त ने मृत्युंजय से कहा – "आर्यश्रेष्ठ! क्षमा कीजिए। मुझे समय का कुछ भी अनुमान न था, आपको कष्ट हुआ होगा। पर अर्धरात्रि बीत चुकी है। यदि उचित समझिए तो हम लोग आगे बढ़ते चलें। प्रातःकाल सूर्योदय के समय तक किसी ग्राम में पहुंचकर वहां दिन-भर विश्राम करें, क्योंकि यहां दोपहर की गर्मी से बचने का संभवतः प्रबंध न हो सकेगा, और इस धूप में

प्रातःकाल फिर चलना उचित न होगा।"

मृत्युंजय ने कुछ सोचकर कहा – "ठीक कहते हो आर्य बीजगुप्त, आगे बढ़ चलना ही उचित होगा।"

थोड़ी देर बाद श्वेतांक लौट आया, उसने कहा–"यहां एक बहुत सुंदर बाटिका है, उसमें एक विशाल भवन भी है। वह वाटिका सामंत⋯की भूमि है। ठहरने का बड़ा सुंदर प्रबंध है।

"सामंत⋯की वाटिका है?"–मृत्युंजय कह उठे–"तो फिर यहां के प्रबंध में कोई त्रुटि न होगी। आर्य बीजगुप्त, मैं इस बाटिका में ठहर चुका हूं। सामंत⋯का एक सुंदर प्रासाद भी यहां है।"

रथ बाटिका में मोड़ दिए गए। माली ने सामंतों का स्वागत किया। उद्यान में अतिथियों के पलंग लगा दिए गए। सब लोग थके थे ही, सो गए; पर बीजगुप्त को नींद न आई।

बीजगुप्त कहां जा रहा था? क्यों जा रहा था? इन प्रश्नों ने उसके मस्तिष्क को चक्कर में डाल रखा था। वह काशी जा रहा था, शांति पाने के लिए, अपनी मानसिक पीड़ा को दूर करने के लिए, अपने कर्तव्य से च्युत न होने के लिए। वह पाटलिपुत्र छोड़ आया था, यशोधरा से दूर रहने के लिए, चित्रलेखा से दूर हटने के लिए। पर यशोधरा से वह दूर न हट सका। यशोधरा उसके और निकट आ गई। शायद उससे भी निकट एक होते हुए नहीं आवे। 'असंभव!' बीजगुप्त किंचित् जोर से कह उठा। बीजगुप्त यशोधरा से प्रेम न कर सका। उसकी दृष्टि के आगे से यशोधरा हट गई, चित्रलेखा आई। चित्रलेखा कौन थी, उसके जीवन से चित्रलेखा का क्या संबंध था? चित्रलेखा उसकी प्रेमिका थी, पत्नी थी। वह चित्रलेखा से प्रेम करता था, चित्रलेखा उससे प्रेम करती थी। क्या वह अब भी प्रेम करती थी? शायद 'हां', शायद 'न'! 'हां' इसलिए कि उसने बीजगुप्त को छोड़ा था, उसी के हित के लिए–'हां' इसलिए कि उसने कुमारगिरि के सामने स्वीकृत किया था। 'नहीं' इसलिए कि वह बिना उसकी इच्छा के उसके जीवन को भार बनाते हुए चली गई।

यही सोचते-सोचते बीजगुप्त को कलरव-गान सुनाई दिया। पूर्व दिशा में प्रकाश की प्रथम रश्मि अपना स्वर्णांचल फैलाए हुए प्रातःकालीन पवन से अठखेलियां कर रही थी और तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते चले जा रहे थे। उसने देखा कि उससे थोड़ी दूर पर यशोधरा खड़ी हुई बेले की अधखिली कली पर के हिमजल के साथ खेल रही है। बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ। नित्यकर्म से निवृत्त होकर वह बाटिका में सुगंधित तथा शीतल समीर से अपने तप्त हृदय को शांत करने आया।

यशोधरा के हाथ में फूल थे, उसने बीजगुप्त को बुलाया—"आर्य बीजगुप्त देखो—प्रकृति के इस सुंदर रूप को तो देखो! यहां कितना उल्लास है, कितनी शांति है, और कितना सौंदर्य है। सारे जगत की चिंता, उसकी तृष्णा और अभिशाप से भरी हलचल से दूर, अति दूर यहां पर निष्कलंक जीवन तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियां कर रहा है।"

बीजगुप्त पास आ गया। वह यशोधरा के पार्श्व में खड़ा हो गया। उसने एक बार अपने चारों ओर देखा—"देवि यशोधरा, मुझे प्रकृति में कोई सुंदरता नहीं दिखलाई देती।"

"प्रकृति में आपको सुंदरता नहीं दिखलाई देती!"—यशोधरा ने आश्चर्यचकित नेत्रों से बीजगुप्त को देखा—"आर्य बीजगुप्त, क्या आप सत्य कह रहे हैं या हंसी कर रहे हैं?"

"हंसी नहीं कर रहा हूं देवि! मैं सत्य कह रहा हूं। तुम कह रही हो कि प्रकृति सुंदर है, मुझे प्रकृति कुरूप दिखलाई देती है।"

यशोधरा बीजगुप्त की बात मानने को तैयार न थी—"आर्य बीजगुप्त देखो! यह दूर्वादल कितना कोमल है, कितना सुंदर है। मेरी तो इच्छा होती है कि मैं यहीं इस दूर्वादल पर रहूं, यहीं बैठूं और इसी पर विश्राम करूं।

बीजगुप्त मुसकराया—"नहीं, यह न करना देवि! यहां पास कोई वैद्य भी नहीं है, जिससे उपचार कराया जा सके। तुम कहती हो, दूर्वादल कोमल है, सुंदर है; केवल इसलिए कि तुमने खुले में जीवन नहीं व्यतीत किया। इस दूर्वादल में कितने कीड़े-मकोड़े हैं, इस पर भी कभी ध्यान दिया है? और दूर्वादल में नमी है, यदि इस पर तुम अधिक देर तक विश्राम करो, तो निश्चय ही तुम्हें शीत हो जायगा। देवि, प्रकृति असुविधाजनक है, अपूर्ण है।"

यशोधरा ने नई बात सुनी; पर बात बड़े आकर्षक ढंग से कही गई थी। तर्क सुंदर थे, यशोधरा के लिए वे अकाट्य थे। वह कह उठी—"प्रकृति अपूर्ण है?"

"हां, प्रकृति अपूर्ण है! प्रकृति के अपूर्ण होने के कारण ही मनुष्य ने कृत्रिमता की शरण ली है। दूर्वादल कोमल है, सुंदर है, पर उसमें नमी है, उसमें कीड़े-मकोड़े मिलेंगे। इसीलिए मनुष्य ने मखमल के गद्दे बनवाए हैं जिनमें न नमी है, और न कीड़े-मकोड़े हैं, साथ ही जो दूर्वादल से कहीं अधिक कोमल हैं। जाड़े के दिनों में प्रकृति के इन सुंदर स्थानों की कुरूपता देखो, जहां कुहरा छाया रहता है, जब इतनी शीतल वायु चलती है कि शरीर कांपने लगता है। गरमी के दिनों में दोपहर के समय इतनी कड़ी लू चलती है कि शरीर झुलस जाता है। प्रकृति की इन असुविधाओं से बचने

के लिए ही तो मनुष्य ने भवनों का निर्माण किया है। उन भवनों में मनुष्य उत्तरी हवा को रोककर जाड़ों में अंगीठी से इतना ताप उत्पन्न कर सकता है कि उसे जाड़ा न लगे। उन भवनों में जवासे तथा खस की टट्टियों को लगाकर मनुष्य गरमी में इतनी शीतलता उत्पन्न कर सकता है कि उसे मधुमास का-सा सुख मिले। प्रकृति मनुष्य की सुविधा नहीं देखती, इसलिए वह अपूर्ण है।''

''ये पुष्प कितने कोमल हैं; इनमें कितनी मादक सुगंध है। यह कलरव-गायन कितना मधुर है। कितना मन को लुब्ध करनेवाला संगीत है। कोयल के स्वर में कितनी मिठास है और करुणा है।''

''ये पुष्प कोमल हैं? ठीक है; पर इनमें कांटे भी तो हैं। न जाने कितने छोटे-छोटे भुनगे इन फूलों के अंदर घुसे हुए हैं। रही इनकी कोमलता तथा इनकी सुगंध, ये क्षणिक हैं। फिर इनकी सुगंध किस काम की? एकांत में ये अपना सौरभ व्यर्थ गंवा देते हैं। और इस कलरव-गायन में माधुर्य हो सकता है। केवल स्वरों का। यह कलरव-गायन, इसमें संयत भाषा न होने के कारण, उस भावहीन संगीत की भांति है, जिसमें स्वरों का उतार-चढ़ाव नहीं है। इस संगीत में सप्त स्वर एक साथ गूंज उठते हैं। इस कलरव-गायन से कहीं अच्छा मानव-कंठ का संगीत होता है। और कोयल में केवल पंचम है, जिसको अधिक देर तक सुनने से चित्त ऊब उठता है। कोयल क्या कहती है, यह कोई नहीं जानता। शायद वह कुछ भी नहीं कहती।''

यशोधरा चकित हो गई। उसके भवन में एक उद्यान था, जहां उसने प्रकृति को देखा था। वह प्रकृति की सुंदरता पर मुग्ध थी; पर आज बीजगुप्त के तर्कों को सुनकर उसने सोचा कि वह कितने भ्रम में थी। आगे एक कृत्रिम प्रपात था। उस प्रपात से दूर हटकर कपोतों के झुंड-के-झुंड एक कृत्रिम नहर में नहा रहे थे। यशोधरा उस ओर बढ़ी, बीजगुप्त उसके साथ हो लिया। मंत्रमुग्ध की भांति यशोधरा उस सौंदर्य को निरख रही थी। उसने धीरे से कहा—''ये कपोत कितने सुखी हैं। आपस में किस प्रकार ये खेल रहे हैं। इनमें ईर्ष्या, घृणा, दुष्टता तथा अन्य अवगुण, जो मनुष्य में पाए जाते हैं, नहीं हैं। जी चाहता है कि मेरे भी पंख होते और मैं कपोती होती।''

बालिका की सरलता पर बीजगुप्त हंस पड़ा—''देवि यशोधरा! मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि यदि तुम कपोती होतीं, तो मनुष्य बनना चाहतीं। तुम समझती हो कि ये कपोत सुखी हैं, निश्चिंत हैं, इनके शत्रु नहीं हैं; यह तुम्हारा भ्रम है। अभिलाषा के पूर्ण होने को सुख कहते हैं, अभिलाषा के पूर्ण न होने को दुःख कहते हैं। क्या तुम जानती हो कि इन कपोतों की सब

अभिलाषाएं पूर्ण हो जाती हैं? प्रश्न तो यह है कि क्या इनके अभिलाषाएं होती भी हैं? मनुष्य इन पशुओं तथा पक्षियों से श्रेष्ठ इसलिए है कि उसके अभिलाषाएं होती हैं और वह अभिलाषा को पूर्ण करके सुखी होता है। मनुष्य कर्त्ता है, पैदा होकर अकर्मण्यता का जीवन व्यतीत करके मर जाने के लिए नहीं बनाया गया है; वह बनाया गया है कर्म करने के लिए। पशु और पक्षी भोजन के लिए किस बुरी तरह से झगड़ते हैं! फिर भी यह याद रखना, मनुष्य को अपने भोजन के लिए परिश्रम करना पड़ता है—वह हल चलाता है और अन्न उत्पन्न करता है। पर पशु और पक्षी प्रकृति के पदार्थों पर रहते हैं। पृथ्वी के कीड़े-मकोड़ों को खाकर पक्षी जीवित रहते हैं—पशुओं में तो एक-दूसरे को खा जाते हैं। इन कपोतों के शत्रु बाज जब इन पर झपटते हैं, तब इनकी दशा देखो! इन्हें कितनी चिंता रहती है? ये कितने विवश हैं।''

यशोधरा आश्चर्य से बीजगुप्त को देख रही थी। बीजगुप्त ने कुछ रुक-कर कहा—''देवि यशोधरा! तुम समझती होगी कि प्राकृतिक वातावरण में रहनेवाले मनुष्य सुखी हैं, पर एक बात याद रखना, मनुष्य अपनी स्थिति से कभी संतुष्ट नहीं रहता। तुम राज-प्रासाद में पली हो, राज-प्रासाद में तुम्हें कोई रुचि नहीं, उसकी सुंदरता तथा उसकी सार्थकता के प्रति तुम उदासीन हो; उदासीन ही नहीं, कभी-कभी तुम्हारी उस वातावरण को छोड़ने की इच्छा भी होती होगी। तुम इस प्रकृति के निकटस्थ झोपड़ियों में सुख देखती होगी, तुम ग्रामों की खुली हवा में पशुओं के साथ प्रकृति से क्रीड़ा करने की सुखद कल्पना के वशीभूत हो जाती हो, ठीक है, स्वाभाविक है; पर जरा इन ग्रामवासियों से तो पूछो—ये लोग यही कहेंगे कि जो सुख है वह महलों में है, दास-दासियों से घिरे रहने में है। फिर हमारे वे प्रपितामह, जिन्होंने ये महल बनवाए हैं, कभी ग्रामवासी रहे होंगे ही। उन्होंने ग्राम छोड़कर नगर क्यों बसाए। इसीलिए कि प्रकृति की कुरूपता को तथा उसकी असुविधाओं को उन्होंने कृत्रिमता से दूर करना उचित समझा। यह बाटिका जिस पर तुम मोहित हो रही हो, स्वयं कृत्रिम है। यदि प्रकृति देखना चाहती हो, तो जंगलों में जाओ, जहां सिंह अपनी खून की प्यासी जीभ को लिए हुए फिरा करते हैं—जहां बड़ी-बड़ी घास में विषधर सर्प अकारण ही लोगों को काटकर मृत्यु के घाट उतारने को प्रस्तुत रहते हैं। इस कृत्रिम नहर को छोड़ो और नदियों को देखो, वहां मगर और घड़ियाल मनुष्य का भोजन करने के लिए जल में छिपे हुए ताक लगाए बैठे रहते हैं। तब तुम देखोगी कि सुख और सौंदर्य प्रकृति में है, या कृत्रिमता में है।''

बीजगुप्त अपनी बात कह रहा था और यशोधरा आश्चर्य से उसके मुख की ओर देख रही थी। अभी तक वह बीजगुप्त को केवल एक चरित्रवान्

व्यक्ति ही समझती थी, आज उसे मालूम हुआ कि बीजगुप्त में उच्च चरित्र के साथ उच्च कोटि का मस्तिष्क भी है। बीजगुप्त की विद्वत्ता से, उसकी मौलिकता से और उसके तर्कों से वह चकित हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बीजगुप्त के प्रति उसकी श्रद्धा भक्ति में परिणत होती जा रही है। उसने कुछ देर तक मौन रहकर कहा—"आर्य बीजगुप्त, धृष्टता के लिए क्षमा कीजिएगा, एक प्रश्न है, आपने यह सब कहां और कब पढ़ा।"

प्रश्न वास्तव में अनुचित था; पर बीजगुप्त ने उस पर ध्यान न दिया—"देवि यशोधरा! संसार की पाठशाला में अनुभव की शिक्षा-प्रणाली से परिस्थितियों ने मुझे सब पढ़ाया है। और अब जलपान का समय हो गया है—क्या चलना उचित न होगा?"—इतना कहकर बीजगुप्त भवन की ओर मुड़ा। यशोधरा भी मुड़ी और बीजगुप्त के साथ वह लौटी।

बीजगुप्त प्रसन्न न था, यह उसके मुख से स्पष्ट था। यशोधरा ने पूछा—"आर्य बीजगुप्त, आज अन्यमनस्क क्यों हैं? आप दुःखी हैं। इस दुःख का कारण क्या आप बतला सकते हैं?"

एक ठंडी श्वास लेकर बीजगुप्त ने कहा—"हां देवि यशोधरा! मैं दुःखी हूं; पर मेरे दुःख का कारण सुनकर क्या करोगी? तुम्हारा उस कारण को न जानना ही उचित है।"

"क्या वह कारण गुप्त है?"

"नहीं! मेरे जीवन की कोई बात गुप्त नहीं है। गुप्त वे बातें रखी जाती हैं, जो अनुचित होती हैं। गुप्त रखना भय का द्योतक है, और भयभीत होना मनुष्य के अपराधी होने का द्योतक है। मैं जो करता हूं, उसे उचित समझता हूं, इसलिए उसे कभी गुप्त नहीं रखता। कारण मैं तुम्हें इसलिए नहीं बतलाना चाहता था कि अपने दुःख से दूसरों को दुःखी करना अनुचित है।"

यशोधरा चुप हो गई; उसने अनुभव किया कि वह इस विषय पर बातें छेड़कर बीजगुप्त को अधिक दुःखित बना रही है। इस समय वे दोनों भवन तक पहुंच गए थे। आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय तथा श्वेतांक इन लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे; जलपान का प्रबंध हो गया था। यशोधरा दौड़कर मृत्युंजय के गले से लिपट गई—"पिताजी, आज आर्य बीजगुप्त ने मुझे ऐसी बातें बतलाईं जिनसे मेरी आंखें खुल गईं। मेरी पुरानी धारणाओं को इन्होंने बिलकुल निर्मूल साबित कर दिया—आर्य बीजगुप्त बहुत बड़े विद्वान् हैं, यह मुझे आज मालूम हुआ।"—उस समय यशोधरा बीजगुप्त की ओर देख रही थी।

यशोधरा ने श्वेतांक की ओर दृष्टि डाली। श्वेतांक का मुख पीला था। ऐसा मालूम होता था कि श्वेतांक पीड़ित है। यशोधरा ने श्वेतांक का हाथ

पकड़कर कहा—"आर्य श्वेतांक! क्या तुम अस्वस्थ हो?" इतना कहकर यशोधरा श्वेतांक की नाड़ी की परीक्षा करने लगी—"नहीं! तुम्हें ज्वर तो नहीं है, फिर तुम्हारा मुख इतना पीला क्यों है?"

"श्वेतांक संभवतः ठीक तरह से विश्राम न कर सकने के कारण थक गया है!"—बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! तुम दोपहर-भर सो लो।"

यशोधरा श्वेतांक का हाथ पकड़े खड़ी थी, और श्वेतांक के मुख का पीलापन धीरे-धीरे लोप होता जा रहा था। उसने कहा—"नहीं, मैं अस्वस्थ नहीं हूं—थोड़ा थक गया हूं, विश्राम से ठीक हो जाऊंगा।"

जलपान करने के बाद बीजगुप्त ने श्वेतांक से कहा—"मैं बहुत थका हूं, इस समय मैं शयन करूंगा। जिस समय भोजन तैयार हो जाय, उस समय तुम मुझको जगा लेना। और तुम आर्य मृत्युंजय के साथ बैठो—वे ऐसा न समझें कि हम लोग उनकी कोई परवा नहीं करते।"

मृत्युंजय तथा यशोधरा के साथ बैठकर श्वेतांक बातें करता रहा।

यशोधरा ने प्रातःकाल की प्रकृति के विषय की बातचीत सुनाई, मृत्युंजय बीजगुप्त के तर्कों को सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। फिर उन्होंने कहा—"श्वेतांक! आर्य बीजगुप्त कुछ अस्वस्थ-से दिखलाई देते हैं?"

श्वेतांक के उत्तर देने से पहले ही यशोधरा ने कहा—"हां, मेरा भी ऐसा अनुमान है, और आर्य बीजगुप्त से मैंने पूछा भी। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि वे दुःखी हैं; पर जब मैंने कारण पूछा, तो उन्होंने कहा कि वे कारण न बतलाएंगे।"—इस बार यशोधरा की दृष्टि श्वेतांक की ओर थी।

मृत्यंजय ने कहा—"बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जो गुप्त होती हैं।"

"संभवतः—यद्यपि मनुष्य में गुप्त भेदों का होना उसकी दूषित प्रवृत्ति का द्योतक है। मनुष्य अपनी बातें गुप्त इसलिए रखता है कि वह भय खाता है कि कहीं समाज यदि उन बातों को जान जाय, तो उसकी समालोचना न करे, या उसको बुरा न कहे। फिर भी मैं इतना कह सकती हूं कि बीजगुप्त के दुःख का कारण गुप्त नहीं है, उन्होंने मुझसे स्वयं यह कहा था।"

"और शायद यह परिभाषा भी कि 'मनुष्य में गुप्त भेदों का होना उसकी कलुषित प्रवृत्ति का द्योतक है', आर्य बीजगुप्त की है!"—श्वेतांक ने व्यंग्यात्मक हंसी हंसते हुए कहा।

"नहीं, समर्थ के लिए इसमें गलती नहीं—जो व्यक्ति समाज को ठुकराकर जीवित रह सकता है, उसके लिए यह सिद्धांत सर्वथा उचित है; पर संसार समर्थ नहीं है। मुझे ही ले लो; मैं आर्य बीजगुप्त का सेवक हूं। उनकी आज्ञा ही मेरी इच्छा है—मेरा कर्तव्य है। मुझमें भी व्यक्तित्व है; पर वह व्यक्तित्व किस काम का? मैं पराधीन हूं। कभी विरोध की स्वाभाविक आग मेरे उर को प्रज्वलित कर देती है। उस समय उस विरोध की आग को

प्रकट करके कलह उत्पन्न कर लेना उचित होगा या उस आग को दबाकर कर्तव्यरत हो जाना उचित होगा? इसका उत्तर स्पष्ट है।"

मृत्युंजय ने कहा—"वत्स श्वेतांक! तुम्हारा यह विरोध अनुचित है, और इसलिए उसको गुप्त रखना उचित होगा!"

यशोधरा ने धीरे से कहा—"तुम्हारा यह विरोध उचित है, आर्य श्वेतांक! मुझे तुम्हारी इस अवस्था पर दुःख है।"—श्वेतांक ने यशोधरा की आंखों में सहानुभूतिमिश्रित प्रेम की एक आभा देखी।

सोलहवां परिच्छेद

कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, जो दूसरे व्यक्तित्व को आकर्षित करके उसको दबा देते हैं और उसको अपना दास बना लेते हैं। चित्रलेखा का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। यद्यपि चित्रलेखा अपनी इस आकर्षण-शक्ति से भली-भांति परिचित न थी; पर अनजाने में ही वह उसका प्रयोग करती थी, और कुमारगिरि अपने को रोक न सका।

कुमारगिरि की कुटी में कुमारगिरि और चित्रलेखा का साथ हुआ। कुमारगिरि चित्रलेखा से दूर हटना चाहता था; पर वह सदा अपने को चित्रलेखा के निकट पाता था, इस पर उसे आश्चर्य होता था। चित्रलेखा कुमारगिरि के साथ उसी कुटी में रहने लगी। जिस समय कुमारगिरि ध्यान लगाकर बैठता था, चित्रलेखा कुटी में आ जाती थी और वह एक गृहिणी की भांति कुटी का प्रबंध करती थी। पर कुमारगिरि ध्यानावस्थित न रह सकता था। उसके नेत्र खुल जाते थे और एक क्षण के लिए चित्रलेखा को देख लेता था। दूसरे ही क्षण अवश्य वह अपनी आंखें फिर बंद कर लेता था, वह प्रयत्न करता था कि वह फिर से ध्यानावस्थित हो जाय; पर यह उसके लिए असंभव था।

और चित्रलेखा! वह कुमारगिरि की कुटी में गई थी कुमारगिरि से प्रेम करने—पर कुटी में पहुंचकर उसकी भावना बदल गई। वह साधना तथा तपस्या को सीखना चाहती थी—वह कुमारगिरि के मार्ग में बाधा न पहुंचाना चाहती थी।

उस दिन दीपक जल चुका था, और रात्रि दो प्रहर बीत चुकी थी। कुमारगिरि के ध्यान-मग्न होने का समय आ गया था, वे अपने आसन पर बैठ गए। कुमारगिरि ने नेत्र बंद किए; पर वे ध्यान-मग्न न हो सके।

चित्रलेखा ने जब देखा कि कुमारगिरि ध्यानावस्थित हो गए, वह कुटी में आ गई और अपने आसन पर बैठ गई।

चित्रलेखा के पैरों की आहट सुनते ही कुमारगिरि ने नेत्र खोल दिए, धीरे से उन्होंने कहा—"देवि चित्रलेखा!"

चित्रलेखा चौंक उठी। वह समझे हुए थी कि कुमारगिरि ध्यानावस्थित हो गए हैं। उसने उठते हुए कहा—"क्षमा करना गुरुदेव! मुझसे भूल हो गई कि मैं आपके ध्यानावस्थित होने के पहले ही चली आई—मैं जाती हूं, जिससे आपको कोई बाधा न पहुंचे।"

कुमारगिरि मुसकराए—"जाने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम यहीं बैठो। आज अभी समाधि न लगाऊंगा, तुमसे कुछ बातचीत करूंगा।"

चित्रलेखा बैठ गई।

"चित्रलेखा! मैं सोच रहा था कि क्या मनुष्य कर्म-मार्ग तथा धर्म-मार्ग दोनों ही साथ-साथ नहीं अपना सकता?"

"मैं नहीं समझी।"

"तुम जब दीक्षा लेने आई थी, उस दिन तुमने कहा था कि मुझसे प्रेम करती हो?"

"हां—और मैंने सत्य कहा था।"

"और प्रेम के क्या अर्थ होते हैं?"

"प्रेम के अर्थ होते हैं दो आत्माओं के संबंध को स्थापित करना।"

कुमारगिरि थोड़ी देर तक मौन रहे—"तो इस परिभाषा के अनुसार प्रेम केवल दो आत्माओं में ही हो सकता है। दो मनुष्यों में ही प्रेम हो सकता है, मनुष्य और ब्रह्म में प्रेम नहीं हो सकता?"

"पर आपके मतानुसार आत्मा ब्रह्म का एक भाग है, इसलिए ब्रह्म से भी इस परिभाषा के अनुसार प्रेम हो सकता है।" - चित्रलेखा ने उत्तर दिया।

"आज मैंने एक नई बात सोची है देवि चित्रलेखा! विराग मनुष्य के लिए असंभव है; क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है, गलत कहता है; क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केंद्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं; मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म' से 'अनुराग' के अर्थ होते हैं ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में यदि देखा जाय, तो विरागी कहलाने वाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं, वरन् ईश्वरानुरागी होता है। यह बात अधिक महत्व की नहीं है; दूसरी बात महत्व की है। क्या संसार से

विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं ?''

चित्रलेखा कुमारगिरि की इन बातों को सुनकर घबड़ा गई। वह कुमारगिरि की मनःप्रवृत्ति को जानती थी, वह शायद कुमारगिरि की कमजोरी को भी समझती थी। उसने कहा—''देव! मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूं। मैं गुरुदेव से ज्ञान पाने को आई हूं—मैं गुरुदेव से जीवन के लक्ष्य को देखने आई हूं। ब्रह्म को जानने के लिए आई हूं।''

कुमारगिरि का मस्तक झुक गया, उनकी साधना ने उनके अपराधी हृदय को दबा दिया।—''ठीक कहती हो देवि चित्रलेखा! ज्ञान तर्क की चीज नहीं है, अनुभव की चीज है। यह कुतर्क मुझमें क्यों उठ पड़ा, मैं स्वयं ही नहीं जानता, पर वास्तव में यह तर्क बड़ा प्रबल हो गया है। इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा कि क्या संसार के प्रति उदासीन रहकर ईश्वर से अनुराग किया जा सकता है? जब तक इस प्रश्न का उत्तर न दे लूंगा तब तक मुझे शांति न मिलेगी।''

चित्रलेखा ने अपने को टटोला—उसने अपने में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन पाया। वह पहले चली थी कुमारगिरि से प्रेम करने—उसने अब अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रेम न कर सकती थी, न उनकी पूजा कर सकती थी और न उनसे सीख सकती थी। नगर के अशांतिमय जीवन से वह घबड़ा गई थी; निर्जन की शांति में, सात्विकता की आभा में, विश्वास के परदे पर उसने सुख देखा, जीवन के आमोद-प्रमोद से वह ऊब उठी थी, अतिसुख उसके लिए उत्पीड़न हो गया था। कुमारगिरि की कुटी के प्रशांत वातावरण में चित्रलेखा ने सुख देखा, तृप्ति देखी।

कुमारगिरि कुछ थोड़ी देर तक सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने फिर कहा—''देवि चित्रलेखा! मैं तुम्हें अभी तक नहीं समझ पाया हूं; पर मेरा हृदय यह कहता है कि हमारा साथ बहुत दिनों का है।''

कुमारगिरि के पास आने के पहले चित्रलेखा ने भी यही सोचा था—''संभवतः! पर गत जीवन की भावना इतनी अस्पष्ट है कि उसे देख नहीं पाती हूं।''

कुमारगिरि हंस पड़े—''संभव है मेरी धारणा गलत हो; पर देवि चित्रलेखा! एक बात ठीक-ठीक बतलाना। तुममें एक आकर्षण-शक्ति है, उस आकर्षण-शक्ति को तुमने कहां पाया है?''

चित्रलेखा का मुख लाल हो गया। कई वर्ष बाद उसने प्रथम बार लज्जा का अनुभव किया, उसका मुख झुक गया—''गुरुदेव! मुझमें आकर्षण-शक्ति है, यह मैं नहीं जानती।''

कुमारगिरि उठ खड़े हुए। उठकर वे टहलने लगे। उन्होंने कहा—''आज समाधि में मन नहीं लगता—निराकार के आधार पर अपने मन को स्थिर

रखना आज कितना कठिन मालूम होता है। यह क्यों?"– इस बार कुमारगिरि का स्वर तीव्र हो गया–"निराकार की उपासना आज कठिन क्यों मालूम होती है–हृदय कह रहा है–साकार! साकार!" उस समय तक कुमारगिरि चित्रलेखा के पास आ गए थे, वे रुक गये और उन्होंने अपने नेत्र चित्रलेखा पर गड़ा दिए–"नर्तकी! मैंने अभी तक निराकार की उपासना की है, अब साकार को अपनाने की इच्छा हो रही है। समझीं। मैं एक प्रयोग करने जा रहा हूं–उस प्रयोग में तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी, उठो।"

चित्रलेखा कांप उठी। उसने योगी के मुख पर एक धुंधली छाया देखी। योगी का सुंदर और शांत मुख-मंडल विकृत हो उठा। अपने द्वारा प्रज्वलित की हुई योगी की आग के शोलों की भयानकता को देखकर वह डर गई। वह उठ खड़ी हुई। उस समय उसकी शक्तियां लोप होती हुई मालूम पड़ रही थीं।

कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया–चित्रलेखा सिर से पैर तक सिहर उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके हाथों पर जलते हुए लोहे के छड़ पहना दिए गए हों। योगी का सारा शरीर जल रहा था–"साकार को अपनाने का प्रयोग कर रहा हूं नर्तकी! इस साकार की भावना को तुमने मेरे हृदय में जागृत किया है, इसलिए तुम्हें मेरे इस प्रयोग में साथ देना पड़ेगा–नहीं, लक्ष्य बनना पड़ेगा! समझीं!"

चित्रलेखा सब कुछ समझती थी–इसी के लिए वह वहां आई भी थी; पर उसने जिस बात की कल्पना की थी, वह न मिली। वह मलय समीरण से अठखेलियां करने आई थी, ज्वालामुखी में जलने न आई थी। उसने कहा–"गुरुदेव!"

कुमारगिरि ने चित्रलेखा को आलिंगन-पाश में कसकर बांध लिया, उसके अधर चित्रलेखा के अधरों से मिल गए, उसने कहा–"नर्तकी! मैं तुमसे प्रेम करता हूं।"

चित्रलेखा कुमारगिरि की गरम श्वास से जली जा रही थी। उसने साहस किया। बल लगाकर उसने अपना मुख कुमारगिरि के मुख से हटा लिया–"गुरुदेव! आप मार्ग-च्युत हो रहे हैं–आप अपनी साधना से विरत हो रहे हैं!"– कुमारगिरि के हाथ का बंधन टूट गया। वह चौंककर पीछे हट गए। उनकी आंखों का पागलपन एक क्षण में ही लोप हो गया। उनका मुख पीला पड़ गया–"अरे मैं क्या कर रहा था?"–कुमारगिरि कह उठे–"मुझे क्षमा करना देवि!"– कुमारगिरि तेजी से कुटी के बाहर चले गए।

चित्रलेखा वहीं बैठ गई। बैठकर, जो कुछ हुआ उस पर सोचने लगी।

वह कुमारगिरि के पास आई थी—और अब वह कुमारगिरि के पास से जाना चाहती थी।

चित्रलेखा भूमि पर लेट गई और सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसने बुरा किया—यह उसने अनुभव किया। वह स्वयं गिरी और उसने दूसरे को गिराया। इन्हीं बातों को सोचते-सोचते वह सो गई।

कुमारगिरि कुटी से बाहर निकलकर खुले मैदान में घूमने लगे। कुछ देर पहले उनका शरीर जल रहा था, अब उनका मस्तिष्क जल रहा था। पहली जलन में सुख था, दूसरी जलन में दुःख था। अपने कार्य-क्षेत्र से और अपनी साधना से वे बुरी तरह से गिर रहे थे। अपनी निर्बलता पर विजय पाना उनका कर्तव्य था।

सामने गहरा अंधकार था। पीछे पाटलिपुत्र के दीपक टिमटिमा रहे थे। कुमारगिरि के पैर उस अंधकार की ओर उठ गए—"नहीं, मेरे लिए अपने को रोकना असंभव है, गिरना अनिवार्य है। अपने को बचाना ही होगा।"—वे कह उठे। उस समय तक वे अपनी कुटी से काफी दूर निकल आए थे।

एकाएक उनके अंदर से किसी ने कहा—"क्या तुम कायर नहीं हो?"

उन्होंने पूछा—"क्यों?"

उत्तर मिला—"तुम कहां जा रहे हो? अपनी निर्बलता पर विजय पाना ही तो सबसे बड़ी साधना है। जब तक तुम स्वयं अपने को नहीं जीत लेते, तब तक तुम अपूर्ण हो, इसीलिए तो चित्रलेखा तुम्हारे पास आई है कि तुम अपने पर विजय पाओ। क्या तुम चित्रलेखा से भय खाते हो? चित्रलेखा तो तुम्हें गिरने को नहीं प्रेरित करती। तुम अपने ही से भय खाते हो। निर्बलता तुममें ही है; उसे दूर करो! साधना तुम्हारे पास ही है, तुम जाते कहां हो?"

कुमारगिरि रुक गए—"तो फिर ऐसा ही सही"— उन्होंने धीरे से कहा और वे अपनी कुटी की ओर लौट पड़े। जिस समय उन्होंने अपनी कुटी में प्रवेश किया, उस समय चित्रलेखा सो गई थी। उसके कपोलों पर के आंसू सूख चुके थे, पर जहां-जहां से आंसुओं की धारा बही थी, उन स्थानों पर लकीर पड़ गई थी। चित्रलेखा के सिरहाने कुमारगिरि खड़े हो गए। वे चित्रलेखा के मुख की ओर कुछ देर तक देखते रहे। वे चित्रलेखा के मुख पर झुके—उस समय उन्होंने चित्रलेखा के अधरों पर मुसकराहट देखी; अपने अधर को चित्रलेखा के अधरों से उन्होंने मिला दिया; पर स्पर्श के साथ ही वह चौंककर पीछे हट गए। चित्रलेखा के अधर कितने ठंडे थे, कितने निर्जीव थे।

कुछ सोचते हुए वे अपने आसन पर बैठ गए। उन्होंने समाधि लगाने का फिर प्रयत्न किया; पर वे ध्यानावस्थित न हो सके। इसके बाद वे लेट गए। और भविष्य में अपने ऊपर विजय पाने का संकल्प करते हुए वे सो गए।

सत्रहवां परिच्छेद

प्रातःकाल चित्रलेखा जब उठी; उसने देखा कि नित्य के नियम के प्रतिकूल कुमारगिरि सो रहे थे। वह बाहर आई, उस समय उसके सिर में दर्द हो रहा था। उसका सारा शरीर जल रहा था। रात-भर उसने बुरे-बुरे स्वप्न देखे थे। उसका हृदय धड़क रहा था।

उस समय सूर्योदय हो रहा था। कलरव के स्वर उस प्रातःकालीन समीर में गूंज रहे थे, जिसकी चाल नवविकसित कलिकाओं के सौरभ-भार से मंद पड़ गई थी। चित्रलेखा बाहर आकर खड़ी हो गई थी। विशालदेव बाहर ही वट-वृक्ष के नीचे बैठा हुआ आराधना में व्यस्त था।

खड़ी होकर चित्रलेखा सोचने लग गई। कुमारगिरि के पास उसका रहना उचित था या नहीं, इस समस्या को वह सुलझाने का प्रयत्न करने लगी। किंतु अब वह जा कहां सकती थी? किस मुख को लेकर वह बीजगुप्त के पास जायगी? और क्या बीजगुप्त उसको स्वीकार भी कर लेगा? इन प्रश्नों का उत्तर दे सकने में वह असमर्थ थी। चित्रलेखा वहां से आगे बढ़ी, वह विशालदेव के पास पहुंची। विशालदेव ने उस समय अपने नेत्र खोले; चित्रलेखा को अपने निकट देखकर उसने अभिवादन करते हुए कहा—"देवि नमस्कार!"

चित्रलेखा के मस्तिष्क में एक विचार एकाएक उठ खड़ा हुआ—"नमस्कार"— इतना कहकर वह वहां रुक गई।

चित्रलेखा को आज अपने पास आते देखकर विशालदेव को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—"क्या देवि को मुझसे कुछ कहना है?"

"हां!"—चित्रलेखा ने कहा—"और जो कुछ कहना है, वह बड़ी आवश्यक तथा महत्व की बात है। पर बात कहने के पहले मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा चाहूंगी कि यदि उसे तुम न मानो, तो किसी दूसरे पर वह बात प्रकट न करो। यदि यह प्रतिज्ञा करो, तो मैं वह बात कह सकती हूं।"

"मैं प्रतिज्ञा करता हूं।"

"तो सुनो विशालदेव! मैं समझती हूं कि मैंने यहां आकर भूल की। मैं ऊपर उठने आई थी, पर देखती हूं कि यह ऊपर उठना नहीं है, वरन् नीचे गिरना है।"

विशालदेव मुसकराया—"हां, समझ रहा हूं।"

विशालदेव की मुसकराहट में छिपे हुए व्यंग्य को चित्रलेखा ने पूर्ण रूप से देख लिया, वह तिलमिला उठी—"तुम हंसते हो, क्योंकि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते। ठीक है, तुमने उस रात को कुमारगिरि को मेरे साथ देखा था। तो फिर तुमसे स्पष्ट ही कर दूं—जिस काम के लिए मैं यहां

आई थी, वह नहीं कर सकती। यहां आने पर जब मैंने अपने को देखा, तो मुझे मालूम हुआ कि मैंने भूल की। मैंने यहां आकर अपने को गिराया है। अधिक गिरने के लिए मैं तैयार नहीं। साथ ही मैं कुमारगिरि को भी गिरा रही हूं और यह एक महान् पाप है। बोलो, इस पाप से छुटकारा पाने के लिए तुम मेरी सहायता कर सकोगे ?"

"इस काम के लिए मैं प्रस्तुत हूं।"

"विशालदेव, तुम आर्य बीजगुप्त का भवन जानते हो ?"

"हां।"

"उनके भवन में श्वेतांक नाम का एक नवयुवक है। उससे कह दो कि मैं उससे मिलना चाहती हूं।"

"बहुत अच्छा।"

उसी समय कुमारगिरि कुटी से बाहर निकले। उनको देखते ही वार्तालाप बंद हो गया। कुमारगिरि अपना मस्तक झुकाए हुए अपराधी की भांति आकर इन दोनों के पास खड़े हो गए। थोड़ी देर तक तीनों मौन रहे, उस मौन को कुमारगिरि ने तोड़ा—"आज मैं बड़ी देर तक सोता रहा।"—वे मुसकरा रहे थे—"मुझे इसका दुःख है !"

इतना कहकर वे आगे बढ़ गए। विशालदेव ने कुमारगिरि के मुख पर एक विचित्र प्रकार का भाव-परिवर्तन देखा। इस भाव-परिवर्तन से चकित होकर उसने चित्रलेखा की ओर देखा—"देवि ! गुरुदेव आज कुछ अस्वस्थ दिखलाई देते हैं।"

"हां, गुरुदेव अस्वस्थ हैं, और उनकी अस्वस्थता का कारण यहां पर मेरी उपस्थिति है। विशालदेव, तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी, मेरे लिए नहीं, अपने गुरुदेव के लिए।"

"मैं करूंगा—आज ही मैं आर्य बीजगुप्त के स्थान पर जाऊंगा।"

कुमारगिरि कुटी से दूर चले गए। वे दिन-भर कुटी नहीं लौटे। विशालदेव ने संध्या के समय पाटलिपुत्र से लौटकर चित्रलेखा से कहा—"देवि, आर्य बीजगुप्त तीर्थयात्रा के लिए काशी गए हुए हैं।"

चित्रलेखा इस सूचना से श्रीहत हो गई। विशालदेव की ओर उसने देखकर कहा—"विशालदेव, अब क्या उपाय है।"

"देवि ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

"तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है और मेरी समझ में भी कुछ नहीं आ रहा है। यह विधि की विडंबना है।"—वह रुक गई, थोड़ी देर तक वह मौन खड़ी रही, उसके नेत्र उस समय एक अज्ञात शून्य में कुछ ढूंढ़ रहे थे—"विधि की विडंबना ही है, शायद अपने पापों का फल भी हो। एक आधार था। उसको छोड़ दिया है, बीजगुप्त को मैंने त्यागा है, क्यों ?—नहीं,

कुछ नहीं। मैं यहां ज्ञान पाने के लिए आई हूं—क्या यही ज्ञान है? भगवान् मुझे ज्ञान दे रहा है। फिर यह सब क्यों? विशालदेव! तुम कुछ नहीं कर सकते, गुरुदेव कुछ नहीं कर सकते, मैं कुछ नहीं कर सकती और शायद भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। जो होना है, वह हो रहा है और होगा!"— चित्रलेखा के नेत्र पागल की भांति चमक उठे—उसका प्रशांत मुख-मंडल विकृत हो उठा। आवेश में वह कांपने लगी।

विशालदेव चित्रलेखा के इस रूप को देखकर सहम उठा—"देवि, क्या तुम अपने गत जीवन को फिर से नहीं अपना सकती?"

चित्रलेखा हंस पड़ी—"गत जीवन को फिर नहीं अपना सकती—कैसी मूर्खता की बात कर रहे हो? मैं आगे बढ़ आई हूं—पीछे जाने के लिए नहीं। पीछे जाना कायरता है, प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल है। संसार में कौन पीछे जा सकता है और कौन पीछे जा सका है। एक-एक पल आगे बढ़कर मनुष्य मृत्यु के मुख में पहुंचता है, यदि वह पीछे ही जा सकता, तो वह अमर न हो जाता? आगे! आगे! यही तो नियम है, पाप में अथवा पुण्य में। समझे!"— इतना कहकर चित्रलेखा वहां से चल पड़ी। विशालदेव अपने सामने से जाती हुई प्रतिमा को देखता ही रह गया।

चित्रलेखा आगे बढ़ी—लताकुंज में बैठे हुए कुमारगिरि को उसने देखा, वह उस ओर बढ़ी। कुमारगिरि चित्रलेखा को देखकर उठ खड़े हुए। चित्रलेखा ने पूछा—"आज दिन-भर गुरुदेव कुटी की ओर नहीं गए?"

"नहीं गया! ठीक कहती हो नर्तकी, कुटी में जाना—उफ, बड़ा भयानक है!"

"हां है! फिर इसका कुछ उपाय है?"

"उपाय! केवल एक उपाय है नर्तकी, उस उपाय को तुम जानती हो। मैं साकार की पूजा पर विश्वास करने लग गया हूं; पर बिना तुम्हारी सहायता के साकार की उपासना असंभव है।"

"सकार की उपासना भ्रम है।"

"इसका निर्णय करना तुम्हारा काम नहीं है नर्तकी, कि साकार की उपासना ठीक है या भ्रम है। तुम मेरी शिष्या हो, तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम मेरी बात मानो!"—इतना कहते-कहते कुमारगिरि तनकर खड़े हो गए।

इस बार चित्रलेखा डरी नहीं, झिझकी नहीं, उसी दृढ़ता के साथ उसने कहा—"योगी, अपने को भूलो मत—तुम्हारे सामने जो स्त्री खड़ी है, वह इतनी असहाया नहीं है कि उस पर शासन कर सको। तुम समझते हो कि तुमने मुझे दीक्षा दी है, यह तुम्हारा भ्रम है, नहीं; यहां पर तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो। तुम किसे आज्ञा दे रहे हो? क्या तुम यह नहीं जानते हो कि जिस पर तुम शासन करना चाहते हो, तुमने अपने को उसका दास बना

लिया है ?"

कुमारगिरि निस्तेज होकर बैठ गए, बैठते हुए उन्होंने करुण स्वर में धीरे से कहा—"नर्तकी ! मैं तुमसे प्रेम करता हूं।"

चित्रलेखा हंस पड़ी—"मैं जानती हूं कि तुम मुझसे प्रेम करते हो; पर मैं तो तुमसे प्रेम नहीं करती ! एक क्षण के लिए मेरी इच्छा तुम पर आधिपत्य जमाने की हुई थी, और मैंने उसका प्रयत्न किया। मैं सफल भी हुई; पर उससे क्या ? पुरुष पर आधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के पुरुष से प्रेम का द्योतक नहीं है, प्रकृति ने स्त्री को शासन करने के लिए नहीं बनाया है। स्त्री शासित होने के लिए बनाई गई है, आत्म-समर्पण करने के लिए। स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती, जिस मनुष्य पर उसने आधिपत्य जमा लिया, वह मनुष्य उसके प्रेम का अधिकारी हो ही नहीं सकता। स्त्री का क्षेत्र है आत्म-समर्पण, अपने अस्तित्व को अपने प्रेमी के अस्तित्व में मिला देना; इसीलिए स्त्री उसी मनुष्य से प्रेम कर सकती है, जो उस पर विजय पा सके, जो उस पर आधिपत्य जमा सके। योगी कुमारगिरि ! यहीं पर विषमता है ! पुरुष का प्रेम आधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ में सौंप देना है। पर यहां बात दूसरी है। यहां मैं स्वामिनी हूं, तुम दास हो। मैंने तुम पर आधिपत्य जमा लिया है, तुमने आत्म-समर्पण कर दिया है। किस बल पर तुम मेरा प्रेम चाहते हो ?"

योगी कुमारगिरि ने मौन-भाव से यह बात सुनी। नर्तकी ने जो कुछ कहा कटु होते हुए भी वह सर्वथा सत्य था। इस पर उन्हें अपनी कमजोरी का अनुभव हुआ, अपनी पराजय के विकराल रूप को उन्होंने देखा। कुछ देर तक वे सोचते रहे, इसके बाद वे उठ खड़े हुए। उनके मुख का पीलापन दूर हो गया था, उनके नेत्रों की चमक लौट आई थी—"ठीक कहती हो, मैंने तुम्हें आत्म-समर्पण किया, मैं तुमसे निर्बल साबित हुआ। तुम्हारे द्वारा ईश्वर ने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मुझको अपनी लघुता का आभास करा दिया। अब आगे कार्यक्रम क्या होगा, यह मैं निर्णय कर चुका हूं। मैं तुम पर विजय पाऊंगा—प्रेम करने के लिए नहीं, केवल तुम पर विजय पाने के लिए, अपने को पतन से उठाने के लिए। विश्वास रक्खो, तुम कुमारगिरि को भविष्य में इतना निर्बल न पाओगी !"

चित्रलेखा ने गंभीर भाव से कहा—"इसमें गुरुदेव की सहायता करना चाहती हूं।"

"किस प्रकार ?"

"मैं गुरुदेव का आश्रम छोड़ना चाहती हूं। जानती हूं कि मैं गुरुदेव के मार्ग पर बाधा के रूप में आकर खड़ी हो गई हूं। मैं यह पाप कर रही हूं।"

''यह असंभव है नर्तकी, तुम मेरा आश्रम नहीं छोड़ सकती। यदि तुम चली जाओगी, तो मैं फिर विजय किस पर पाऊंगा, तुम्हें मेरे साथ ही रहना पड़ेगा, समझीं !''

''योगी, तुम्हें मेरे ऊपर विजय पाना नहीं है, तुम्हें अपने ही ऊपर विजय पाना है; जब तक मैं यहां रहूंगी, तुम अपने ऊपर विजय नहीं पा सकोगे, इतना मैं भली-भांति जानती हूं। मेरे चले जाने में ही तुम्हारा कल्याण है।''

कुमारगिरि का मुख लाल हो गया—''नहीं, मेरे साथ तुम्हें रहना पड़ेगा। तुमने मुझे बहुत अधिक निर्बल समझ रक्खा है! तुम्हारे जाने से मुझमें विरोध की भावना नहीं रहेगी, तो फिर मैं अपने ऊपर विजय ही किस प्रकार पा सकूंगा? अपने ऊपर करनेवाले प्रयोग का एक साधन मुझको चाहिए था, ईश्वर ने तुम्हें मेरे पास इसीलिए भेजा था। मैं असफल रहा; पर असफलता मेरा क्षेत्र नहीं है। जब तक मैं पूर्ण रूप से सफल न हो जाऊं, मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। इतना याद रखना!''

''न जाने दोगे! क्या तुम मुझको रोक सकते हो?''

''नहीं, तुम्हें मैं रोक नहीं सकता, शायद संसार में कोई भी व्यक्ति तुम्हें नहीं रोक सकता! निर्बल सबल को रोक सके—यह असंभव है। मैं केवल तुमसे प्रार्थना कर सकता हूं, आग्रह कर सकता हूं, अनुरोध कर सकता हूं। इतना तो तुम मानोगी कि तुमने मुझे गिराया है!''

''मैंने तुम्हें नहीं गिराया है, गिराया तो तुमने ही है अपने को, पर तुम्हारे पतन में मेरा हाथ अवश्य है!''

''ठीक है, मैंने ही अपने को गिराया है, और मैं ही अपने को उठा सकूंगा। पतन में तुम साधन हुई हो, तो क्या अब अपने को उठाने में मेरे लिए तुमको साधन बनना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है?''

चित्रलेखा का मुख झुक गया। उसकी आंखें कुमारगिरि की आंखों से हटकर पृथ्वी पर पड़ गईं—''हां, ठीक कहते हो।''

''तो फिर क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगी? क्या कुछ दिन तुम मेरे साथ मुझे अपनी साधना पूरी कर लेने के लिए न रुक सकोगी?''

चित्रलेखा थोड़ी देर तक मौन रही, धीरे से उसने पूछा—''योगी, कितनी अवधि चाहते हो?''

''अवधि! यदि मैं विजयी हो सका, तो फिर तुम्हें मेरे पास ठहरने में क्या आपत्ति होगी? यदि मैं विजयी हुआ, तो फिर मैं यह समझ लूंगा कि मेरा मार्ग ठीक है! और उस समय तुम भी उचित मार्ग का अनुसरण करोगी!''

''नहीं—मैं तुम्हारे मार्ग पर नहीं चल सकती; पर अभी मैं रुकूंगी—यदि जाने की इच्छा होगी, तो फिर बतलाऊंगी। उस समय तुम मुझे न रोक सकोगे।''

अठारहवां परिच्छेद

चित्रलेखा बीजगुप्त के जीवन से बिना उसकी इच्छा के चली गई थी, यशोधरा उसके जीवन में बिना उसकी इच्छा के आ गई थी। बीजगुप्त हंस पड़ा—जीवन उसके निकट एक समस्या थी।

काशी के जनरव में बीजगुप्त ने अपने हृदय की हलचल को डुबाना चाहा था; पर यह न हो सका, केवल हलचल का रूप बदल गया। छाया-चित्र की तरह उसकी आंखों के आगे से चित्रलेखा का चित्र हटकर यशोधरा का चित्र आ गया था। दुःख की हलचल सुख के कंपन में परिणत हो गई थी। बीजगुप्त और उसके साथियों को काशी में आए हुए प्रायः एक सप्ताह हो गया था।

उस दिन संध्या हो गई थी, सब लोग एक साथ बैठे हुए काशी नगर के सुंदर दृश्यों पर वार्तालाप कर रहे थे। मृत्युंजय ने कहा—"मेरी इच्छा होती है कि मैं काशी-वास करूं; पर क्या करूं, विवश हूं; अभी गृहस्थी का जाल मुझको जकड़े ही हुए है।"— इतना कहकर मृत्युंजय ने अर्थभरी दृष्टि से बीजगुप्त की ओर देखा।

बीजगुप्त ने मृत्युंजय की बातों का अर्थ न समझने की कोशिश करते हुए कहा—"आर्य! रत और विरत, अनुरागी और विरागी तथा गृहस्थ और संन्यासी में भेद बहुत थोड़ा है और जो कुछ है भी, वह नहीं के बराबर है।"—इतना कहकर वह हंस पड़ा—"मेरी बात पर आर्य आश्चर्य तथा विश्वास प्रकट कर सकते हैं; पर जो कुछ मैं कहता हूं वह सत्य है।"

श्वेतांक को अच्छा अवसर मिल गया। मृत्युंजय का पक्ष-समर्थन करते हुए उसने कहा—"स्वामिन्, सत्य क्या है, क्या कभी यह जाना भी जा सकता है! परिस्थिति की अनुकूलता के दूसरे नाम को ही सत्य के नाम से पुकारा जाता है, और परिस्थितियां सदा एक-सी नहीं हुआ करतीं।"

मृत्युंजय के मुख पर मुसकराहट दौड़ गई—"वत्स श्वेतांक, तुमने जो कुछ कहा, यथार्थ होते हुए भी यह उस प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालता, जो हमारे सामने है। आर्य बीजगुप्त! क्या आप अपनी बात को अधिक स्पष्ट कर सकेंगे?"

बीजगुप्त श्वेतांक के अनुचित उत्तर से मर्माहत-सा हो गया था, उसने शुष्क स्वर में कहा—"बात स्वयं स्पष्ट है, मनुष्य कभी वास्तव में विरागी नहीं हो सकता। विराग मृत्यु का द्योतक है। जिसको साधारण रूप से विराग कहा जाता है, वह केवल अनुराग के केंद्र को बदलने का दूसरा नाम है। अनुराग चाह है, विराग तृप्ति है।"—बीजगुप्त की दृष्टि अचानक ही यशोधरा की ओर घूम गई। यशोधरा की दृष्टि बीजगुप्त की दृष्टि से मिल

गई।

थोड़ी देर तक मौन का साम्राज्य रहा—उस मौन में निर्जीवता का सूनापन था, विषाद की छाया थी। श्वेतांक को छोड़कर कोई भी कुछ न सोच रहा था। श्वेतांक ने अनुचित बात कह दी थी—बीजगुप्त की बात का खंडन करके उसने अपराध किया था। श्वेतांक को इसका दुःख था।

यशोधरा ने श्वेतांक की ओर देखा, श्वेतांक का मुख पीला पड़ गया था। वह श्वेतांक के मनोभावों को समझ गई, उस मौन को तोड़ते हुए यशोधरा ने कहा—"आर्य बीजगुप्त! यहां कब तक ठहरने का विचार है?"

"ठीक नहीं कह सकता। कभी इच्छा होती है कि पाटलिपुत्र लौट पड़ूं; पर दूसरे ही क्षण यहां कुछ दिन और रहने को जी चाहने लगता है!"—इस बार मृत्युंजय की ओर देखकर बीजगुप्त ने कहा—"आर्य! आपका कब तक यहां ठहरने का विचार है?"

मृत्युंजय ने यशोधरा की ओर देखकर कहा—"मेरी इच्छा की यहां कोई बात नहीं है। यशोधरा की इच्छा से मैं यहां आया हूं, उसकी इच्छा ही पर जाना भी निर्भर है।"

बीजगुप्त ने यशोधरा को देखा, वह मुसकरा रही थी। यशोधरा की उस दिन की मुसकराहट में एक ऐंद्रजालिक छवि थी, आज प्रथम बार बीजगुप्त ने यशोधरा के सौंदर्य की सुधा के वास्तविक रूप को देखा और काफी देर तक उसको देखता ही रहा। उस समय यशोधरा भी एकटक बीजगुप्त की ओर देख रही थी। मृत्युंजय उस समय बाहर देखने लगे।

श्वेतांक को यह घटना असह्य हो गई—"स्वामी, क्या आज नगर-पर्यटन करने का विचार नहीं है?"

बीजगुप्त चौंक उठा। उसने एकदम ही अपनी आंखें यशोधरा से हटा लीं, और यशोधरा ने भी अपनी आंखें श्वेतांक की ओर फेर लीं। बीजगुप्त ने मृत्युंजय से कहा—"आर्य! नगर में घूमने का क्या विचार है?"

"आज तो इच्छा नहीं होती।"

श्वेतांक ने यशोधरा से पूछा—"देवि यशोधरा, तुम चलोगी?"

यशोधरा हंस पड़ी—"यहां बैठकर भी क्या करूंगी?"

बीजगुप्त ने कहा—"जाने की तो मेरी इच्छा भी नहीं है!"

"तो फिर क्या आप आर्य श्वेतांक को मेरे साथ जाने की अनुमति दे सकेंगे?"—यशोधरा ने बीजगुप्त से पूछा।

"अवश्य!"—बीजगुप्त को अपनी इच्छा के विरुद्ध कहना पड़ा।

यशोधरा श्वेतांक के साथ चली गई।

बीजगुप्त ने मृत्युंजय से कहा—"आर्य! आप काशी में यज्ञ करनेवाले थे, क्या आपने विचार बदल दिया?"

मृत्युंजय हंस पड़े—"हां, कुछ दिनों के लिए विचार स्थगित कर दिया है। आर्य बीजगुप्त! एक बात नहीं समझ पा रहा हूं, क्या यज्ञ से बलि-प्रदान वाला अंश नहीं निकाला जा सकता।"

"क्यों?"— बीजगुप्त भी हंसने लगा—"आर्य तो बौद्ध भिक्षुओं की बातों में अभी नहीं पड़े!"

"इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? इतने रक्तपात से लाभ! यह रक्तपात धर्म में ग्लानि ही पैदा करता है। जो कुछ बुद्ध ने कहा, उसमें तथ्य अवश्य है!"

"और शायद सत्य भी है।"—धीरे से बीजगुप्त ने कहा।

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ—"आर्य, यहां जी नहीं लगता, यदि नगर में घूम आवें, तो इसमें आपको कोई आपत्ति होगी?"

"केवल चलने की कोई विशेष इच्छा न थी, आपत्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि चलना चाहते हो, तो मैं भी तैयार हूं!"

नगर के कोलाहल से ऊबकर मृत्युंजय ने गंगा की ओर रथ फेर दिया। गंगा के किनारे नौकाएं तैयार थीं—बीजगुप्त ने देखा कि श्वेतांक और यशोधरा एक नौका पर चढ़कर जानेवाले हैं। उसने पुकारा—"श्वेतांक!"

श्वेतांक उस समय गंगा के वक्ष पर नाचती हुई नौकाओं को देख रहा था। उसने बीजगुप्त की आवाज नहीं सुनी। यशोधरा ने श्वेतांक से कहा—"देखो, पिताजी के साथ आर्य बीजगुप्त आ रहे हैं।"

श्वेतांक ने अपना सिर घुमाया—उस समय तक रथ रुक गया था और बीजगुप्त तथा मृत्युंजय रथ से उतर पड़े थे। उस समय बीजगुप्त का आना श्वेतांक को बुरा लगा—उसका मुख-मंडल विकृत हो उठा। उसने धीरे से कहा—"नाश हो!"—पर यशोधरा ने यह सुन लिया।

यशोधरा गंभीर हो गई—"आर्य श्वेतांक! जीवन में संयम की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है!"

श्वेतांक यशोधरा की इस गंभीरता से सहम-सा गया, फिर भी उसने कहा—"देवि! संयम और प्रेम में विरोध होता है।"

इस समय तक मृत्युंजय और बीजगुप्त पास आ गए थे।

श्वेतांक के मुख से क्षोभ मिश्रित निराशा के भाव अभी तक दूर न हुए थे। बीजगुप्त ने उसके मुखांकित भाव पढ़ लिए। उसने कहा—"श्वेतांक! तुम लोगों के चले जाने के बाद हम लोगों का चित्त नहीं लगा, और हम लोग भी चले आए।"

एक रूखी हंसी हंसते हुए श्वेतांक ने कहा—"मैंने स्वामी से पहले ही चलने को कहा था

सब लोग नौका पर बैठ गए और नौका गंगा की धारा में छोड़ दी गई। चारों ओर गंगा के वक्षस्थल पर नौकाएं उतरा रही थीं—कहीं गाना हो रहा थी, कहीं बाजे बज रहे थे और कहीं लोग बातें कर रहे थे तथा हंस रहे थे।

यशोधरा ने कहा—"आर्य श्वेतांक! तुम्हें काशी सुंदर लगता है या पाटलिपुत्र!"

श्वेतांक ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"मुझे पाटलिपुत्र अधिक प्रिय है क्योंकि पाटलिपुत्र का-सा ऐश्वर्य यहां काशी में नहीं है। काशी तो विद्या का केंद्र है!"

"और बीजगुप्त! तुम्हें?"

"मुझे आजकल काशी अच्छा लगता है।"

यशोधरा ने फिर पूछा—"आजकल क्यों?"

"देवि यशोधरा! किसी भी स्थान का प्रिय लगना परिस्थिति की अनुकूलता पर निर्भर है। हम स्थान को पसंद नहीं करते—स्थान तो केवल एक जड़ पदार्थ है; हम पसंद करते हैं वातावरण को, जिसके हम अभ्यस्त हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वह स्थान प्रिय होता है, जहां उसका जन्म हुआ है और उसका लालन-पालन हुआ है। सदा वहीं पर रहने से उसके मित्र वहीं पर बन जाते हैं। हमारा जीवन जड़ पदार्थों से निर्मित नहीं है, वह निर्मित है चेतन से; व्यक्तियों से, जिनके संसर्ग में हम आते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि मुझे पाटलिपुत्र अधिक प्रिय हो; पर बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। एक ही परिस्थिति सदा सबको नहीं सुहाती। हमारी प्रकृति परिवर्तन चाहती है। परिवर्तन के लिए यह आवश्यक होता है कि हम कुछ दिनों के लिए दूसरी परिस्थितियों में जायं। वे दूसरी परिस्थितियां तब तक हमें सुहाती हैं जब तक हमारी परिवर्तन की भावना पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं हो जाती। मेरी तबीयत काशी में नहीं भरी; इसलिए मुझे अभी काशी अधिक प्रिय है।"

यशोधरा हंस पड़ी—"आर्य बीजगुप्त! आपमें एक विचित्र प्रतिभा है; आपके तर्क अकाट्य होते हैं"—इस बार उसने श्वेतांक से हंसते हुए कहा—"आर्य श्वेतांक! ज्ञान तर्क की वस्तु नहीं है, आप आर्य बीजगुप्त से सावधान रहिएगा।"

श्वेतांक ने भी हंसते हुए कहा—"देवि यशोधरा! मैं आर्य बीजगुप्त का गुरुभाई हूं, तो मैं अपने गुरु महाप्रभु रत्नांबर से भी सावधान रहूं!"

यशोधरा ने हिचकिचाते हुए कहा—"यह कैसे कहूं?"

बीजगुप्त ने कहा—"क्यों नहीं देवि यशोधरा, यह भी कह सकती हो। जो बात ठीक समझती हो, उसके कहने में संकोच ही क्या?"

"नहीं, संकोच की कोई बात नहीं आर्य बीजगुप्त, आपके विषय में मैं

सब कुछ कह सकती हूं, क्योंकि मैं आपसे इतनी घनिष्ठ हूं कि मुझे आपमें और अपने में अधिक भेदभाव नहीं दिखता; पर महाप्रभु रत्नांबर—वे पूज्य हैं।''

बीजगुप्त ने यशोधरा की ओर देखा। उसकी आंखें यशोधरा की आंखों से मिल गईं। दोनों एकटक कुछ देर तक एक-दूसरे को देखते रहे। यशोधरा की आंखों में लज्जा न थी, संकोच न था। एक सुषमा थी, स्पष्टता थी, निश्छल भाव था। बीजगुप्त की धमनियों में रक्त तीव्र गति से प्रवाहित होने लगा, हृदय धड़कने लगा, सारे शरीर में एक कंपन-सा दौड़ गया। बीजगुप्त ने यशोधरा से अपनी आंखें हटा लीं, श्वेतांक की आंखों से उसकी आंखें मिलीं। श्वेतांक की आंखों ने कह दिया कि वह बीजगुप्त की इस भावना को समझ रहा है। बीजगुप्त को अपने ऊपर कुछ क्रोध हुआ और श्वेतांक के ऊपर भी।

''श्वेतांक!''

''स्वामी!''

बीजगुप्त सम्हल गया—''कुछ नहीं—अरे हां, हम लोगों को यहां आए हुए कितने दिन हुए?''

श्वेतांक समझ गया कि बीजगुप्त जो कुछ कहना चाहते थे, वह नहीं कह रहे हैं। उसने कुछ गणना करके बतलाया—''आठ दिन।''

''तो अब पाटलिपुत्र लौट चलना उचित होगा।''—इस बार उसने धीरे से, इतने धीरे से कि केवल श्वेतांक ही सुन सके, कहा—''चित्रलेखा को भूलना असंभव है—पाटलिपुत्र चलने का प्रबंध करो।''

बीजगुप्त के इस अचानक विचार-परिवर्तन से श्वेतांक को प्रसन्नता हुई। मृत्युंजय और यशोधरा को आश्चर्य हुआ। मृत्युंजय ने कहा—''क्या आर्य बीजगुप्त का वास्तव में लौट चलने का विचार है?''

बीजगुप्त ने सिर नीचा कर लिया—''आर्य मृत्युंजय! मुझे क्षमा करिएगा। मुझमें बहुत बड़ा अवगुण है कि मैं अपनी प्रेरणाओं पर अधिक अवलंबित हूं। मैं नहीं जानता कि एक घंटे बाद मैं क्या करूंगा। इस समय एकाएक मुझे पाटलिपुत्र की याद आ गई—काशी एकदम मुझे काटने लगा। काशी में एक पल रहना भी मुझे अब बड़ा कष्टसाध्य होगा।''

यशोधरा ने पूछा—''तो कब चलने का विचार है—हम लोगों को भी प्रबंध करना होगा। आर्य बीजगुप्त! प्रेरणा पर काम करते समय दूसरों की सुविधा पर भी ध्यान देना मनुष्य का कर्तव्य है।''

बीजगुप्त का मुख लज्जा से पीला पड़ गया—''ठीक कहती हो देवि यशोधरा! मुझे क्षमा करना। तुम्हारी सुविधा पर ही मैं अवलंबित हूं, इतना विश्वास रक्खो। जब तुम उचित समझो, तभी मैं चलूंगा।''

"नहीं आर्य बीजगुप्त ! मुझे कोई असुविधा नहीं—मैंने तो केवल साधारण बात कही थी। आपको कष्ट न हो—हम लोग कल संध्या तक लौट चलने का प्रबंध कर लेंगे। कुछ सामान मोल लेना है, आर्य श्वेतांक के साथ मैं बाजार से वह सामान कल ले आऊंगी।"

उन्नीसवां परिच्छेद

बीजगुप्त को अपने ऊपर आश्चर्य हुआ। वह बिना अपनी इच्छा के, बिना जाने हुए यशोधरा की ओर आकर्षित होता जा रहा था, और संभवतः वह यशोधरा को अपना भी लेता, यदि उस दिन श्वेतांक की मुखांकित भावनाओं ने उसको सावधान न कर दिया होता।

वह काशी आया था, अपने दुःख को भूलने के लिए—अपनी हलचल को दूर करने के लिए। पाटलिपुत्र में रहकर, चित्रलेखा के निकट रहकर, अपने ऐश्वर्य की परिस्थितियों में रहकर उसके हृदय का घाव अच्छा नहीं हो सकता था, पाटलिपुत्र में उसने यही सोचा था। यही सोचकर वह वहां से निकला था—विराग की भावना उसे वहां खींच लाई थी। एक लक्ष्यहीन पथिक की भांति वह घर के बाहर निकल पड़ा था।

'लक्ष्यहीन पथिक?'—बीजगुप्त की विचारधारा बदल गई। — क्या कोई भी व्यक्ति लक्ष्यहीन है—अथवा लक्ष्यहीन होना व्यक्ति के लिए कभी संभव है? शायद 'हां'—बीजगुप्त असमंजस में पड़ गया। एक दूसरा प्रश्न उसी समय उसके सामने खड़ा हो गया—'क्या मनुष्य का कोई लक्ष्य भी है? कोई भी व्यक्ति बता सकता है कि वह क्या करने आया है, क्या करना चाहता है और क्या करेगा? नहीं, यही तो नहीं संभव है। मनुष्य परतंत्र है। परिस्थितियों का दास है, लक्ष्यहीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है। मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य ही नहीं है। मनुष्य स्वावलंबी नहीं है, वह कर्त्ता भी नहीं है, साधन-मात्र है!'

बीजगुप्त ने करवट बदली। वह सो न सका, अर्धरात्रि बीत चुकी थी, चारों ओर घोर निस्तब्धता का साम्राज्य था, बीजगुप्त ने फिर सोचना आरंभ किया—'मैं कल पाटलिपुत्र चल रहा हूं। क्यों?' वह सोचने लगा—'चित्रलेखा से मिलने के लिए, चित्रलेखा को अपने यहां खींच लाने के लिए।'—उसे अपने ऊपर विश्वास था, वह जानता था कि यदि वह हठ करे तो चित्रलेखा उसका विरोध न करेगी—'नहीं, चित्रलेखा के पास अब न जाऊंगा, क्यों जाऊं? क्या मैंने चित्रलेखा को छोड़ा है? नहीं, चित्रलेखा ने

मुझे छोड़ा है! यह क्यों? संभवतः यही विधि का विधान हैं। यदि यही विधि का विधान है, तो अमिट है। फिर क्यों दु:ख किया जाय? चित्रलेखा गई—जाय। मैं अपने जीवन को क्यों नष्ट करूं?'

बीजगुप्त ने आंखें बंद कर लीं, वह सोने का प्रयत्न करने लगा। 'क्या त्याग और वेदना से जीवन नष्ट होता है? क्या दु:ख जीवन का एक भाग नहीं? क्या प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य में सुख ही लेकर आता है? नहीं। दु:ख इतना ही महत्व का है, जितना सुख। तो फिर दु:ख ही झेला जाय—तो फिर त्याग का ही मार्ग अपनाया जाय। मुझे अपना कर्तव्य करना चाहिए—मेरा कर्तव्य क्या है?'

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ—उसने एक गिलास ठंडा पानी पिया, उसने अपना मुंह धोया, उसके बाद वह लेट गया।

'मेरा कर्तव्य क्या है? मैं पैदा हुआ हूं कर्म करने के लिए। मेरा कर्तव्य है कि मैं गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करूं, मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने वंश की वृद्धि करूं। इसके लिए मुझे आवश्यक है कि मैं विवाह करूं। क्या विधि का यही विधान है? संभवतः चित्रलेखा मेरे जीवन से इसीलिए चली गई है। विवाह करूं—एक बार गृहस्थी का अनुभव करूं। और विवाह के लिए योग्य पात्री भी है। यशोधरा—यशोधरा! सौंदर्य में चित्रलेखा से यशोधरा किसी अंश में कम नहीं है। यशोधरा रत्न है—एक पवित्र प्रतिमा है। क्या यशोधरा से विवाह करना ही पड़ेगा? स्त्रियोचित सभी गुण यशोधरा में विद्यमान हैं, फिर यशोधरा ही सही। पर क्या संभव है? मैं एक बार यशोधरा को अस्वीकार कर चुका हूं। किस मुख से यशोधरा को मृत्युंजय से मांगूं। बहुत संभव है महासामंत मृत्युंजय यशोधरा का पाणि देने से इनकार कर दें।'—बीजगुप्त हंस पड़ा—'नहीं—असंभव! अब मैं यशोधरा से विवाह की बात नहीं सोच सकता। बहुत विलंब हो गया है—बहुत विलंब हो गया है। चित्रलेखा—बस चित्रलेखा ही मेरे जीवन में है।'

बीजगुप्त फिर उठ खड़ा हुआ। उसने समझ लिया कि उसके लिए नींद आना असंभव है। उस समय चंद्रमा निकल रहा था। बीजगुप्त भवन के बाहर निकला, वह गंगा-तट की ओर चल दिया। दिन निकलने में अभी दो प्रहर बाकी थे।

बीजगुप्त गंगा-तट पर पहुंचा। कुछ लोग बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे—बीजगुप्त भी एक कोने में जाकर बैठ गया।

उस स्थान पर तीन व्यक्ति थे। जो व्यक्ति उस समय बोल रहा था, उसकी अवस्था प्रायः सत्तर वर्ष की थी। वह भद्र था; उसके मुख पर झुर्रियां पड़ी थीं। उसकी बातचीत से मालूम होता था कि वह संन्यासी है। शेष दो उम्र में उससे अधिक छोटे थे। उसकी दाहिनी ओर एक

दुबला-पतला युवक था, जिसकी अवस्था प्रायः पच्चीस वर्ष की थी। वह मंझोले कद का था, उसके मुख पर चिंता की लकीरें पड़ गई थीं। संन्यासी की बाईं ओर एक मोटा-सा अधेड़ था, जिसकी अवस्था प्रायः पचास वर्ष की थी। उसकी दाढ़ी बड़ी और घनी थी, उसके केश पकने लगे थे।

संन्यासी कह रहा था—"अभी तुम्हारी संन्यास लेने की अवस्था नहीं है, जाओ अपना कर्तव्य-पालन करो और पिताजी की आज्ञा मानो।"

नवयुवक ने संन्यासी के पैर पकड़ लिए—"मैं आपका आश्रित हूं—मुझे संन्यास की दीक्षा दीजिए। अब जीवन में मुझे कोई अनुराग नहीं रह गया है। संसार में रहने में कोई उद्देश्य तो होना ही चाहिए। जब एक बार विरक्ति हो गई, तो संसार में रहकर मैं अपनी आत्मा का हनन करूंगा। मुझे वहां शांति न मिलेगी। आप मेरे पिताजी से पूछ सकते हैं कि ये दो वर्ष कितने यातनापूर्ण थे।"

अधेड़ व्यक्ति ने कहा—"हां, पर तुम मेरी बात भी तो नहीं मानते। मैं कहता हूं, दूसरा विवाह कर लो। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? जीवन-मरण तो सदा लगा रहता है। तुम्हारे कोई संतान नहीं है—अभी संन्यास ग्रहण करना अनुचित है। विवाह कर लेने पर तुम्हारा जीवन फिर से अनुरागमय हो जायगा।"

संन्यासी ने उस युवक से कहा—"तुम्हारे पिता ठीक कहते हैं। वत्स, प्रेम एक मिथ्या कल्पना है। स्त्री और पुरुष का संबंध केवल संसार में ही होता है—संसार से पृथक् दोनों ही भिन्न-भिन्न आत्माएं हैं। संसार में भी स्त्री और पुरुष में आत्मा का ऐक्य संभव नहीं है। प्रेम तो केवल आत्मा की घनिष्ठता है। वह घनिष्ठता कोई बड़े महत्व की वस्तु नहीं होती, वह टूट भी सकती है। उस घनिष्ठता के टूटने पर अपने जीवन को दु:खमय बना लेना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपना विवाह करो—विवाह न करके तुम कर्तव्य से विमुख हो रहे हो।"

"यह किस प्रकार?"

"सुनो! स्त्री अबला है। प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि वह अबला को आश्रय दे। विवाह द्वारा ही पुरुष अबला स्त्री को आश्रय देता है। यदि पुरुष स्त्री को आश्रय न दे, तो स्त्री की दशा बड़ी शोचनीय हो जाय। इधर पुरुष के सामने भी काफी कठिनाइयां आवें। जिस समय तुम विवाह न करके संन्यासी होने की बात सोचते हो, तुम कायरता करते हो। एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है, उससे तुम विमुख होते हो।"

युवक ने कहा—"पर महाराज, मैं भोग-विलास को तिलांजलि देकर तपस्या की अग्नि में तपने जा रहा हूं, यह तो कायरता का द्योतक नहीं है!"

संन्यासी हंस पड़ा—"तुम तपस्या में तपना चाहते हो। क्यों? केवल इसलिए कि जिससे तुमने प्रेम किया, वह तुम्हारे मार्ग से चला गया; पर तुम्हारी यह तपस्या व्यर्थ है—यह एक तरह से आत्महत्या है। इस तपस्या का कोई लक्ष्य नहीं है, व्यर्थ ही तुम अपनी आत्मा का हनन करना चाहते हो।"

युवक ने संन्यासी के चरणों पर अपना मस्तक नमा दिया—"जो आप कहते हैं, मान्य है।"—इसके बाद वह युवक अपने पिता के साथ चला गया।

बीजगुप्त ने संन्यासी के सामने मस्तक नमाया। संन्यासी ने मुसकराकर पूछा—"क्या तुम भी संन्यास लेना चहते हो?"

बीजगुप्त ने कहा—"नहीं, अभी तो संन्यास लेने का कोई विचार नहीं है। आपकी बातों से मुझे बड़ा आनंद आया, इसलिए बैठ गया हूं।"

संन्यासी मुसकराया—"जो व्यक्ति रात्रि में इस समय गंगा के तट पर आ सकता है—और जो कंगाल अथवा संन्यासी नहीं है, वह व्यक्ति अवश्य किसी उद्विग्नता से पीड़ित है।"

"आपका अनुमान उचित है"—बीजगुप्त ने उत्तर दिया—"मेरी उद्विग्नता असाधारण है। आपकी बातों में मैंने उस उद्विग्नता से संबद्ध समस्या को देखा है। क्या मैं इस संबंध में अधिक प्रश्न कर सकता हूं?"

"प्रसन्नतापूर्वक!"

"आपने अभी कहा था कि युवा के लिए असफल प्रेम पर अपना जीवन बलिदान करना आत्महत्या करना है; पर क्या प्रेम की स्मृति की टीस मनुष्य-जीवन में स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक नहीं है? क्या वेदना को दबाने अथवा उसके प्राकृतिक रूप को कृत्रिम उपायों द्वारा भूलने में अपनी आत्मा का हनन नहीं होता?"

संन्यासी कुछ देर तक मौन रहा। उसके बाद उसने आरंभ किया—"जो कुछ तुम कहते हो वह ठीक है। दु:ख स्वयं ही समय के साथ दूर हो जाता है। भिन्न प्रकृति के पुरुषों के साथ दु:ख के दूर होने की अवधि भर ही भिन्न होती है। उसको कृत्रिम उपायों द्वारा उस अवधि के पहले ही दूर करना अवश्य अप्राकृतिक है; पर प्रत्येक अप्राकृतिक व्यवहार, आत्मा का हनन नहीं है—यह याद रखना। कृत्रिमता को हमने इतना अधिक अपना लिया है कि अब वह स्वयं ही प्राकृतिक हो गई है। वस्त्रों का पहनना अप्राकृतिक है, जो भोजन हम करते हैं उस भोजन का करना अप्राकृतिक है, यह भोग-विलास अप्राकृतिक है, यह ऐश्वर्य ही अप्राकृतिक है। प्राकृतिक जीवन एक भार है—उस जीवन में हलचल लाने के लिए ही तो ये खेल-तमाशे, नाच-रंग, उत्सव इत्यादि मनुष्य ने बनाए हैं। और अब हम

इन्हीं सबको जीवन कहने लगे हैं। दुःख को कृत्रिम उपायों द्वारा दूर करना भी आत्मा का हनन नहीं है, क्योंकि वह यद्यपि अप्राकृतिक है, पर स्वाभाविक है।"

"धन्यवाद!"—बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ—"आपने मेरे मस्तिष्क से एक भार हटा दिया। आपकी बातों से मैं अपना कर्तव्य निश्चित करने में समर्थ हुआ हूं। विदा।"—इतना कहकर बीजगुप्त वहां से चल दिया।

उस समय प्रातःकालीन समीरण चलने लगा। पूर्व दिशा में हलका-सा प्रकाश हो रहा था, पक्षियों ने उड़ना आरंभ कर दिया था। बीजगुप्त लौट आया—लौटकर वह सो गया।

जिस समय वह सोकर उठा, दिन दोपहर चढ़ गया था। श्वेतांक के साथ यशोधरा आवश्यक चीजें खरीदने बाजार चली गई थी।

नित्य-कर्म से निवृत्त होने के बाद बीजगुप्त मृत्युंजय के पास गया। मृत्युंजय ने बीजगुप्त को देखते ही कहा—"आर्य बीजगुप्त, आज आप बहुत विलंब से उठे, क्या रात्रि के समय आपको अच्छी तरह से नींद नहीं आई?"

"हां! मैं रात-भर सोचता रहा।"

"क्या सोचते रहे?"

"भावी जीवन के विषय में ही कुछ सोचता रहा।"

मृत्युंजय किंचित् मुसकराए—"जीवन से चित्रलेखा के निकल जाने के बाद भावी जीवन पर विचार करना स्वाभाविक है। आर्य बीजगुप्त! कुछ निर्णय भी किया?"

मृत्युंजय की मुसकराहट में छिपे हुए व्यंग्य से बीजगुप्त तिलमिला उठा। अपनी बात कहते-कहते वह रुक गया—"अभी कुछ निर्णय नहीं किया; पर शीघ्र ही कुछ-न-कुछ निर्णय करना होगा।"

"मैं जानता हूं आर्य बीजगुप्त कि तुम्हारा क्या निर्णय होगा। मैं मनुष्यों की मनःप्रवृत्ति को कुछ-कुछ पहचानने लगा हूं।"

बीजगुप्त ने बात बदलते हुए कहा—"आर्य! आपने अपने सेवकों को चलने का प्रबंध करने का आदेश दे दिया होगा?"

"हां, और तुम्हारे सेवकों को भी श्वेतांक से आदेश दिलवा दिया है।"

"अच्छा किया।"

इस समय यशोधरा का कंठ-स्वर बाहर सुनाई पड़ा—"आर्य श्वेतांक! यदि यह मणिमाला पिताजी ने पसंद न की, तो तुम्हीं को फेरनी पड़ेगी—तुम्हारे कहने से ही मैंने इसको खरीदा है।"—इन शब्दों के साथ यशोधरा ने प्रवेश किया।

यशोधरा ने हंसते हुए कहा—"आर्य बीजगुप्त! आप सोते रह गए और देखिए, मैं कितनी वस्तुएं ले आई; आपने अपने लिए कुछ नहीं खरीदा?"

बीजगुप्त ने मुसकराते हुए कहा—"देवि यशोधरा! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं।"

"आवश्यकता तो मुझे भी न थी; पर काशी से लौटते समय काशी की सौगात तो ले चलनी चाहिए थी।"—इतना कहकर यशोधरा ने अपना सामान खोलना आरंभ किया।

"यह कैसी है?"—एक मणिमाला यशोधरा ने बीजगुप्त के हाथ में देते हुए पूछा।

"अच्छी है, पर काफी अधिक मूल्यवान भी होगी।"

"हां! मैंने अभी इसे मोल नहीं लिया है, केवल पिताजी को दिखलाने के लिए लेती आई हूं।"

मृत्युंजय ने मणिमाला ले ली—"यदि तुम्हारी इच्छा है तो ले लो।"

यशोधरा ने अन्य वस्तुएं दिखलाईं। सभी पसंद कर ली गईं। बीजगुप्त ने श्वेतांक की ओर देखा—"तुमने कुछ नहीं लिया।"

"स्वामी से मैंने कुछ पूछा नहीं था—और फिर मुझे कुछ आवश्यकता भी तो नहीं थी।"

"नहीं! तुम्हें कुछ अपने लिए अवश्य लेना चाहिए था। मैं भी चलता हूं। देवि यशोधरा! यदि तुम्हें कष्ट न हो, तो फिर से नगर चल सकती हो। मुझे अपने लिए वस्तुओं को पसंद करने में तुम सहायता दे सकोगी?"— बीजगुप्त ने यशोधरा की ओर देखा।

"मैं चल सकती हूं, पर भोजनोपरांत। अभी तो बहुत थक गई हूं।"

भोजन करने के बाद बीजगुप्त ने मृत्युंजय से पूछा—"आर्य! आप भी चलिएगा?"

"नहीं, मैं अब बहुत वृद्ध हो गया। मुझे नगर के जनरव में अच्छा नहीं लगता।"

बीजगुप्त श्वेतांक और यशोधरा को लेकर बाजार चला। सबसे पहले तीनों जौहरी की दुकान पर रुके। बीजगुप्त और श्वेतांक ने हीरे की अंगूठियां लीं। सामने मोतियों का बहुमूल्य हार था, यशोधरा उस ओर देख रही थी। बीजगुप्त ने वह हार निकलवाया—"देवि यशोधरा! यह हार कैसा है?"

"बड़ा सुंदर है! आर्य बीजगुप्त! मैंने पहले इसे न देखा था, नहीं तो मणिमाला न लेकर मैं यही हार लेती।"—इतना कहकर उसने श्वेतांक से कहा—"आर्य श्वेतांक, यह सब आपके ही कारण हुआ।"

जौहरी से हार लेकर बीजगुप्त ने यशोधरा के गले में पहना दिया—"देवि यशोधरा, यह मेरी भेंट है, इसे स्वीकार करो।"

बीजगुप्त के कर-स्पर्श से यशोधरा सिर से पैर तक कांप उठी। हार

उतारते हुए उसने कहा–"आर्य बीजगुप्त! बिना अपने पिता की आज्ञा के मैं यह हार स्वीकार करने में असमर्थ हूं।"

हार बीजगुप्त ने अपने हाथ में ले लिया–"देवि यशोधरा! इस हार को स्वीकार करने में तुम्हें कोई आपत्ति न होनी चाहिए, फिर भी तुमने अपने पिता की स्वीकृति की जो बात कही है, वह उचित ही है।"

बीसवां परिच्छेद

कुमारगिरि को चित्रलेखा के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। चित्रलेखा उसके पास आने को इतनी इच्छुक थी; वह चित्रलेखा की ओर आकर्षित न हुआ था, किन्तु चित्रलेखा ही उसकी ओर आकर्षित हुई थी। फिर चित्रलेखा में यह परिवर्तन क्यों हुआ?

कुमारगिरि को चित्रलेखा के व्यवहार से अधिक आश्चर्य अपने व्यवहार पर हुआ। उसने चित्रलेखा को अपने से दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया था। फिर उसने क्यों चित्रलेखा को स्वीकार कर लिया था? क्या इसलिए कि वह अपने ही अविश्वास को दूर करना चाहता था? कुमारगिरि का क्षेत्र विजय था–पराजय की भावना उसके लिए नई थी। शायद कुमारगिरि को अपनी कमजोरी का पता था, उसी कमजोरी को दूर करने के लिए ही उसने चित्रलेखा को स्वीकार किया था। उसने प्रयोग किया, वह असफल रहा। असफलता भी कितनी भयानक थी! वह अपने से तो हारा ही, वह हारा एक साधारण नर्तकी से–स्वयं अपने से पराजित होने पर उसे दु:ख था, पर उस दु:ख की भावना को नर्तकी से पराजित होने पर क्रोध की भावना ने दबा दिया। कुमारगिरि कह उठा–'नहीं, नर्तकी चित्रलेखा को वश में करना ही होगा। पर किस प्रकार?'

'चित्रलेखा मुझसे क्यों प्रेम नहीं कर सकती?'–कुमारगिरि के मन में प्रश्न उठा–'शायद इसलिए कि वह एक व्यक्ति से प्रेम करती है। यदि चित्रलेखा बीजगुप्त से प्रेम करना छोड़ दे तो संभव है, नहीं निश्चय है वह मुझे आत्म-समर्पण कर दे। बीजगुप्त को चित्रलेखा के मार्ग से हटाना होगा।'

चित्रलेखा को कुमारगिरि के स्थान पर आए हुए दो मास से अधिक हो गए। गत घटना भी एक मास पुरानी हो गई। इस बीच में कुमारगिरि ने अपने को संयत रखा–किंचित् कमजोरी का भी प्रदर्शन उन्होंने न होने

दिया। कुछ दिनों तक के लिए उनका यह विचार हो गया कि वे चित्रलेखा को अपने पास रखते हुए भी विषय-वासना को दूर रक्खें—पर यह भावना स्थायी न रह सकी। एक बार जो आग प्रज्वलित हो चुकी थी, वह आहुति मांग रही थी। कुमारगिरि अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके।

उस दिन रात के समय कुमारगिरि ने चित्रलेखा को अपने पास बैठने का आदेश देकर कहा—"देवि चित्रलेखा! एक मास हो गया, इस बीच में मैंने अपने को उठाने का प्रयत्न किया है। अब मुझसे मेरी दुर्बलता दूर हो गई, मैं यह समझ रहा हूं।"

"संभवतः!"—चित्रलेखा केवल मुसकरा दी।

कुमारगिरि ने अपने होंठ दबाते हुए कहा—"मैंने सुना है कि आर्य बीजगुप्त काशी की यात्रा करने गए हैं—उनके साथ आर्य मृत्युंजय तथा उनकी कन्या यशोधरा भी गई है।"

"क्या यशोधरा भी बीजगुप्त के साथ गई है।"—चित्रलेखा चौंक उठी।

इस बार कुमारगिरि मुसकराए—"इसमें आश्चर्य ही क्या है? देवि चित्रलेखा! तुमने आर्य बीजगुप्त को यह कहकर छोड़ा है कि यशोधरा से विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करें—तुमने उचित किया। आर्य बीजगुप्त के लिए क्या यह उचित नहीं है कि यशोधरा से विवाह कर लें?"

"मैं नहीं जानती! मैं नहीं जानती!"—चित्रलेखा का स्वर तीव्र हो गया—"कृपा करके बीजगुप्त के संबंध में आप मुझसे कोई बात न करें।"

"बीजगुप्त के संबंध में कोई बात न करूं? क्यों, इसलिए कि तुम बीजगुप्त से प्रेम करती हो। तुम्हें यह असह्य है कि बीजगुप्त किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करे। फिर तुमने बीजगुप्त को छोड़ा ही क्यों था? तुम समझती हो कि स्त्री को ही सब कुछ करने का अधिकार है, पुरुष को नहीं है; तुम समझती हो कि बीजगुप्त तुम्हारा दास बनकर रहे; पर यह संभव नहीं है।"

कुमारगिरि के स्वर में प्रतिहिंसा का एक तीखा व्यंग्य था। जिस स्त्री से वे पराजित हुए थे, उसको पराजित करना ही उनका उद्देश्य था।

चित्रलेखा आवेश में कांपने लगी—"मैंने जो कुछ किया, वह बीजगुप्त के भले के लिए किया। मैं बीजगुप्त को समाज की दृष्टि से नीचे गिरा रही थी, मैंने उनको छोड़कर उनको ऊपर उठाने में सहायता दी है।"

"यह किस प्रकार मान लूं? तुम अपने को धोखा दे रही हो, देवि चित्रलेखा! जिस समय तुमने बीजगुप्त को छोड़ा था, उस समय तुमने उनको मुझसे प्रेम करने के लिए छोड़ा था।"—कुमारगिरि का स्वर तीव्र हो गया, आज कुमारगिरि ने अपने में अपनी उसी पुरानी स्फूर्ति, अपनी उसी पुरानी गुरुता, अपने उसी पुराने तेज का अनुभव किया, जिसको वे चित्रलेखा के अपने जीवन में आने के बाद खो चुके थे—"तुम बीजगुप्त को

धोखा दे सकती हो, तुम मुझे धोखा दे सकती हो; पर तुम अपने को धोखा नहीं दे सकती। तुमने वासना के आवेश में आकर पवित्र प्रेम को ठुकरा दिया था—तुमने मुझमें कुछ देखा और तुम मेरी ओर आकर्षित हो गई! उस समय तुममें पशुता की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी थी—तुमने मनुष्यता को तिलांजलि दे दी थी। तुम बिना बीजगुप्त की इच्छा के बीजगुप्त का जीवन भार बनाकर मेरे पास चली आई—और बीजगुप्त?—उसने एक साधारण नर्तकी पर गृहस्थी के सुख को बलिदान कर दिया। यही नहीं, उसने अपने जीवन को नष्ट कर दिया—केवल इसलिए कि वह तुमसे प्रेम करता था; और प्रेम की पवित्रंता को अनुभव करता था।"

चित्रलेखा चिल्ला उठी—"बस करो! बस करो!"

कुमारगिरि ने अपनी आंखें चित्रलेखा पर गड़ा दीं—इसके बाद वे हंस पड़े—"बस करूं, इतनी ही बात से तुम चंचल हो उठी नर्तकी।—नहीं, बात पूरी करूंगा और तुम्हें सुननी पड़ेगी। तुमने जो कुछ किया, उसका बदला तुमको मिल गया! तुम समझती हो, बीजगुप्त तुमसे अब भी प्रेम करता है—तुम समझती हो कि बीजगुप्त के यहां लौटने पर जब तुम बीजगुप्त के पास जाओगी, वह तुमको स्वीकार कर लेगा? यदि तुम ऐसा समझती हो, तो भूल करती हो। तुम्हारे विष के प्रभाव को दूर करनेवाला अमृत उसे मिल गया। तुमने उसे मिटाने में कुछ भी न उठा रक्खा था; पर यशोधरा ने उसे बचा लिया। और अब बीजगुप्त यशोधरा के साथ वैवाहिक जीवन के आनंद का उपभोग कर रहा है।"

चित्रलेखा का मुख पीला पड़ गया—"क्या तुम सच कह रहे हो योगी? क्या बीजगुप्त ने यशोधरा के साथ विवाह कर लिया? नहीं योगी! यह संभव नहीं है।"

"यह संभव नहीं है!"—कुमारगिरि के स्वर में हृदय में बर्छी-सा चुभने वाला व्यंग्य था—"तुम्हारा वासना के वशीभूत होकर पवित्र प्रेम को ठुकराकर मेरे पास चले आना संभव है। और बीजगुप्त का एक स्वर्गीय प्रतिमा से पवित्र वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेना संभव नहीं है? उफ, तुममें कितना झूठा अभिमान है, अपने ऊपर कैसा अचल विश्वास है! तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं होता तो जाओ, नव-दंपति आज प्रातःकाल के समय आ गए हैं; उनको बधाई दे आओ—जाओ, तुम अपनी आंखों से ही अपने प्रेमी, नहीं अपने दास को दूसरी स्त्री से प्रणय-क्रीड़ा करते देख आओ!"

"क्या वे आ गए?"—चित्रलेखा उठ खड़ी हुई। उसका शरीर कांप रहा था—उसका मुख श्वेत हो गया था। उसने पाटलिपुत्र की ओर देखा—"क्या वे लौट आए? योगी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं—तुम यह कह दो कि तुमने जो कुछ कहा, वह झूठ है।"

''कह दूं कि झूठ है? हा: हा: हा: हा:। सत्य को झूठ कह दूं? जाओ! जाओ! तुम स्वयं देख आओ।''

चित्रलेखा बैठ गई—''नहीं! सब समाप्त हो गया, अब न जाऊंगी—जाने से लाभ? मेरा धन लुट गया।''—चित्रलेखा के स्वर में करुणा थी।

कुमारगिरि चित्रलेखा के निकट खिसक आए—''सब समाप्त हो गया? कहीं कुछ समाप्त भी होता है, एक बात का समाप्त होना दूसरी बात का आरंभ होना है। समाप्त कैसे हो गया देवि चित्रलेखा?''—कुमारगिरि का स्वर कोमल हो गया था—उसमें एक प्रकार के मृदुल कंपन का समावेश हो गया था—''तुम जानती हो, मैं तुमसे प्रेम करता हूं। और तुम भी मुझसे प्रेम नहीं करतीं, तो मुझसे घृणा भी नहीं करतीं। तुम मेरे जीवन में आना चाहती हो—अभी तक तुम नहीं आ सकीं केवल बीजगुप्त के कारण। तुमने उसके जीवन को दुःखमय बनाया—उसने तुम्हारे जीवन को दुःखमय बनाया। बीजगुप्त ने एक आधार पा लिया, तुम्हें भी आधार न ढूंढ़ना पड़ेगा, देवि चित्रलेखा, मैं तुमसे प्रेम करता हूं!''—कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया।

चित्रलेखा ने अपना हाथ कुमारगिरि के हाथ में बिना किसी विरोध के दे दिया—उसने अपना सिर उठाकर कुमारगिरि की आंखों से अपनी आंखें मिला दीं।

कुमारगिरि कहता ही गया—''प्रेम! प्रेम ही मेरा धर्म हो गया है। तुम मेरे जीवन में आ गई हो, तुम मुझे प्रेम की दीक्षा देने आई हो। आओ! हम-तुम एक हो जायं।''

कुमारगिरि का मुख झुका—चित्रलेखा का मुख कुछ ऊपर उठा। दोनों के अधर मिल गए—काफी देर तक दोनों के अधर मिले रहे।

कुमारगिरि पागल की तरह बकने लगे—''तुम मुझे डुबाने के लिए आई हो, मैं भी डूबने को तैयार हूं! चलो, कितना सुख है, कितनी हलचल है! मेरी आराध्य देवि! मेरी प्राणेश्वरी! आज तुम्हारे यौवन के अथाह सागर में डूबने आया हूं—कुमारगिरि के नेत्र बंद हो गए थे। चित्रलेखा के नेत्र भी बंद हो गए थे। दोनों ने एक-दूसरे को आलिंगन-पाश में बांध लिया था।

चित्रलेखा कह उठी—''तो फिर ऐसा ही हो।''

जब प्रातःकाल चित्रलेखा की आंख खुली, वह उद्विग्न थी। बीजगुप्त ने उसे छोड़ दिया। यह भावना उसके लिए असह्य थी। उसका संसार अंधकारमय था, उसे रह-रह कर, अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। उसने बीजगुप्त को छोड़ा ही क्यों था।

उस समय कुमारगिरि सो रहे थे। कुमारगिरि का मुख विकृत हो रहा

था। संयम को एक क्षण में ही तोड़ देनेवाली वासना ने उनके तेजोमय मुख-मंडल पर एक धुंधलेपन का आवरण डाल दिया था। चित्रलेखा कुछ देर तक एकटक कुमारगिरि की ओर देखती रही, इसके बाद वह एकाएक अकारण ही कांप उठी। उसे वहां अधिक देर तक रुकने का साहस न हुआ। वह बाहर चली आई। उस व्यक्ति का मुख, जिसके साथ रात-भर उसने भोग-विलास किया, उसे इतना भयानक तथा घृणोत्पादक क्यों लग रहा था! – इस पर उसे आश्चर्य हुआ। विशालदेव उस समय उपासना समाप्त कर रहा था। चित्रलेखा को देखकर उसने नमस्कार किया–''देवि का मुख आज इतना उतरा हुआ क्यों है?''

''रात-भर मैंने भयानक स्वप्न देखे हैं!''–चित्रलेखा मुसकरा दी–''उन स्वप्नों ने मुझे उद्विग्न बना दिया।''

''आज अभी तक गुरुदेव कुटी के बाहर नहीं आए?''

''वे अभी तक समाधिस्थ हैं!''

''समाधिस्थ हैं!''–आश्चर्य के साथ विशालदेव ने कहा–''आज पहली बार गुरुदेव ने अपने जीवन का नियम तोड़ा है।''

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे, इसके बाद विशालदेव ने कहा–''देवि चित्रलेखा, क्या मैं आपके उन स्वप्नों के संबंध में अधिक पूछ सकता हूं?''

''इतना ही जान लेना यथेष्ट होगा कि वे स्वप्न मेरे गत जीवन से संबद्ध हैं।''

''गत जीवन से संबद्ध हैं?''–विशालदेव ने कुछ सोचा–''देवि, यदि आप उचित समझें, तो मैं आर्य बीजगुप्त का पता लगा आऊं–संभव है कि वे आ गए हों।''

''वे आ गए हैं, इतना मैं जानती हूं''–चित्रलेखा का स्वर शुष्क हो गया–''पर इससे क्या? उनके आने से अथवा न आने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं?''

विशालदेव ने चित्रलेखा को देखा–''देवि! तुम बड़ी विचित्र हो–तुम्हें समझना बड़ा कठिन है। अभी उस दिन तुम यहां से बीजगुप्त के पास जाना चाहती थीं।''

चित्रलेखा का मुख लाल हो गया–''हां, उस दिन मैं जाना चाहती थी; पर आज नहीं जाना चाहती। मेरे व्यक्तिगत जीवन के संबंध में तुम्हारे लिए इतनी उत्सुकता दिखाना कहां तक उचित है, तुमने इस पर कभी विचार भी किया है?''

विशालदेव का सिर झुक गया–उसने धीमे स्वर में कहना आरंभ किया–''ठीक कहती हो देवि! पर तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन में उत्सुकता दिखाने का अर्थ होता है अपने गुरु के जीवन में उत्सुकता दिखाना, और यह

मेरे लिए स्वाभाविक तथा उचित है। देवि चित्रलेखा! तुम अच्छी तरह से जानती हो कि यहां तुम्हारी उपस्थिति इस कुटी की संयमपूर्ण शांति को नष्ट कर रही है। यह आश्रम एक कुल के समान है, जहां के प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के उचित तथा अनुचित कार्यों में टीका करने का ही नहीं, वरन् हस्तक्षेप तक करने का अधिकार है!"

"मैं इस बात को मानने को बाध्य नहीं हूं।"

"न सही। फिर भी मैं आज बीजगुप्त के यहां जाऊंगा—केवल अपने गुरुभाई श्वेतांक से मिलने के लिए। देवि! मैं फिर प्रार्थना करता हूं कि एक बार तुम और विचार करो, तुम हम लोगों पर दया करो!"

चित्रलेखा हंस पड़ी—"दया! किस पर दया करने को कह रहे हो और किससे दया करने को कह रहे हो? तुम बधिक से दया की आशा करते हो—तुम संहारकर्त्ता से निर्माण कराना चाहते हो? भूलते हो! भूलते हो!"—इतना कहकर चित्रलेखा वहां से चली गई।

दोपहर के समय विशालदेव नगर से लौट आया। चित्रलेखा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। इतना सब कह चुकने के बाद—अपने निर्णय के बाद भी वह बीजगुप्त के संबंध में जानना चाहती थी। जिस समय विशालदेव लौटा, उस समय चित्रलेखा कुटी के बाहर वट-वृक्ष के नीचे लेटी हुई थी। विशालदेव को देखते ही वह उठकर बैठ गई।

विशालदेव सीधे चित्रलेखा के पास आया—"देवि चित्रलेखा! मैं बतला दूं कि आर्य बीजगुप्त से नहीं मिला, मैं केवल श्वेतांक से मिलकर लौट आया हूं। मैं अधिक देर तक वहां ठहरा भी नहीं, क्योंकि श्वेतांक आर्य मृत्युंजय के यहां जा रहा था—मैं भी उसके साथ वहां तक बातें करता हुआ गया। इसके बाद वह भीतर चला गया और मैं लौट आया।"

चित्रलेखा ने पूछा—"श्वेतांक ने मेरे विषय में भी तुमसे कुछ पूछा!"

"हां! तुम्हारे स्वास्थ्य तथा कुशल-क्षेम के विषय में वह मुझसे पूछता रहा। वह जल्दी में था—नहीं तो वह यहां आता भी। एक बात और बतलाऊं—शायद तुम्हें आश्चर्य हो, श्वेतांक यशोधरा से प्रेम करता है—और वह उससे विवाह करना चाहता है!"

चित्रलेखा चौंक उठी—"श्वेतांक यशोधरा से विवाह करना चाहता है? मेरा तो ऐसा अनुमान था कि बीजगुप्त से यशोधरा का विवाह हो गया है।"

इस बार विशालदेव को आश्चर्य हुआ—"बीजगुप्त से यशोधरा का विवाह हो गया, यह किस प्रकार अनुमान कर लिया? श्वेतांक ने यह तो कहा था कि बीजगुप्त यशोधरा की ओर आकर्षित अवश्य हुए थे; पर उसका विश्वास है कि बीजगुप्त यशोधरा से विवाह कभी न करेंगे।

बीजगुप्त का तुम्हारी ओर अनुराग स्थायी है।"

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई—"धन्यवाद! विशालदेव, जो कटु शब्द मैंने तुमसे कहे हैं, उनके लिए तुम मुझे क्षमा करना। मैं आज यहां से चली जाऊंगी, इतना विश्वास रखना।"

चित्रलेखा सीधे कुटी के अंदर चली गई। विशालदेव चित्रलेखा के इस व्यवहार को न समझ सका, वह कह उठा—"बड़ी विचित्र स्त्री है।"

कुमारगिरि उस समय लेटे हुए चित्रलेखा के संबंध में ही सोच रहे थे। उनका चित्त उद्विग्न था। चित्रलेखा को देखते ही वे पागल की तरह उसकी ओर यह कहते हुए बढ़े—"अभी तक तुम कहां थी मेरी रानी—आओ! आओ!"— पर चित्रलेखा के नेत्रों से अपने नेत्रों के मिलने के साथ ही उनका पागलपन दूर हो गया। चित्रलेखा के नेत्र जल रहे थे—उनमें घृणा, क्षोभ और ग्लानि के भावों का सम्मिश्रण था, उसने तड़पकर कहा—"नीच और झूठे पशु! अलग रहो।"

कुमारगिरि हट गए, चित्रलेखा ने कहा—"तुमने मुझे धोखा दिया—वासना के कीड़े! तुम मुझसे झूठ बोले। तुम्हारी तपस्या विफल हो जायगी और तुम्हें युगों-युगों नरक में जलना पड़ेगा। मैं जाती हूं—अब तुम मुझे रोक न सकोगे।"

कुमारगिरि ने साहस किया—"मैंने जो कुछ किया, तुम्हारे प्रेम में अंधा होकर किया।"

"वासना के कीड़े! तुम प्रेम क्या जानो? तुम अपने लिए जीवित हो, ममत्व ही तुम्हारा केंद्र है—तुम प्रेम करना क्या जानो? प्रेम बलिदान है, आत्मत्याग ममत्व का विस्मरण है। तुम्हारी तपस्या और तुम्हारा ज्ञान—तुम्हारी साधना और तुम्हारी आराधना—यह सब भ्रम है, सत्य से कोसों दूर है। तुम अपनी तुष्टि के लिए गृहस्थ-आश्रम की बाधाओं से, कायरतापूर्वक, संन्यासी का ढोंग लेकर विश्व को धोखा देते हुए, मुख मोड़ सकते हो—तुम अपनी वासना को तुष्ट करने के लिए मुझे धोखा दे सकते हो—और फिर भी तुम प्रेम की दुहाई देते हो!"

कुमारगिरि को यह अपमान असह्य हो गया। वे खड़े हो गए—"जाओ नर्तकी! मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं। तुमने मुझे गिराया और तुम मुझे उठा भी रही हो; तुमने सिर्फ मुझे पराजित किया—मैंने भी तुम्हें पराजित किया। तुम मुझसे क्या कहती हो? पहले अपने को देखो; अपने मुख पर पाशविकता की छाया को देखने में तुम समर्थ नहीं हो सकोगी—इतना मैं जानता हूं। जाओ, अपने साथ अपना अभिशाप लेती जाओ।"—कुमारगिरि आवेश में कांपने लगे थे—वे बाहर चले गए।

इक्कीसवां परिच्छेद

मृत्युंजय के यहां से लौटकर श्वेतांक ने बीजगुप्त से कहा—"योगी कुमारगिरि का शिष्य विशालदेव आज मुझसे मिला। वह कह रहा था कि देवि चित्रलेखा अच्छी तरह से हैं और उनका स्वास्थ्य अच्छा है।"

बीजगुप्त ने कोई उत्तर न दिया।

श्वेतांक ने फिर पूछा—"क्या मेरे लिए यह उचित न होगा कि मैं स्वामिनी को जाकर देख आऊं?"

"नहीं"—बीजगुप्त ने कहा—"यह सब व्यर्थ है।"

श्वेतांक ने देखा कि चित्रलेखा की बातों में बीजगुप्त की कोई विशेष रुचि नहीं, और उसका माथा ठनका। वह वहां से चला गया।

बीजगुप्त की उद्विग्नता पाटलिपुत्र आकर घटी नहीं, वरन् वह और बढ़ गई। उसके हृदय में दो भागों में तुमुल युद्ध मचा हुआ था, दो प्रतिमाएं उसके सामने थीं। चित्रलेखा के चले जाने के बाद उसने अपने जीवन में एक प्रकार के सूनेपन का अनुभव किया था—और वह सूनापन उसके लिए असह्य था। उस सूनेपन में यशोधरा चली आई। अब वह यशोधरा को अपनाना चाहता था—उससे विवाह करना चाहता था। पर वह एक बार यशोधरा को अस्वीकार कर चुका था—इस समय उसी यशोधरा को दान देने के लिए मृत्युंजय से कहना उसके लिए बहुत बड़ी पराजय होगी और उसकी आत्मा उस पराजय को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी।

बीजगुप्त मौर्य साम्राज्य की सेना जनपद का सदस्य था। पाटलिपुत्र आने के बाद राज्य-कार्य में भी उसका मन न लगा।

बीजगुप्त के उर में उस हलचल से प्रेरित एक क्षणिक विरक्ति की भावना बढ़ती जा रही थी। उसने घर से बाहर निकलना छोड़ दिया था। नगर का विशाल जनरव, उसके उत्सव, उसके आमोद-प्रमोद बीजगुप्त को काटते थे।

आज श्वेतांक ने चित्रलेखा की बात चलाकर बीजगुप्त के हृदय में एक और हलचल उत्पन्न कर दी। वह उस रात को सो न सका। चित्रलेखा प्रसन्न है—स्वस्थ है। और बीजगुप्त दुःखी है। कैसी विषमता!—कैसा भ्रम। फिर पराजय ही सही, यशोधरा से विवाह करना ही होगा। अपने जीवन के सूनेपन को दूर करके रहना ही होगा।

श्वेतांक ने बीजगुप्त के स्वर में, उसकी मुद्रा में तथा चित्रलेखा की ओर से बीजगुप्त की उदासीनता में प्रथम बार उस सत्य का आभास देखा, जिसको अभी तक वह न देखने की कोशिश कर रहा था। उस रात को वह भी न सो सका।

प्रातः हुआ। बीजगुप्त उस दिन अधिक प्रसन्न था। उसने निश्चय कर लिया था कि मृत्युंजय से यशोधरा के विवाह के विषय में बातचीत करेगा। वह बाहर आया, आज प्रथम बार उसके मुख पर वह प्राकृतिक मुसकराहट दिखलाई दी, जिसका बीजगुप्त अभ्यस्त था। जलपान करने को वह बैठा—श्वेतांक वहां न था। उसने परिचारिका से श्वेतांक को बुलाने को कहा।

श्वेतांक आया। उसका मुख पीला था—यह स्पष्ट था कि वह गहरी चिंता से पीड़ित है। बीजगुप्त ने कहा—"श्वेतांक! तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है क्या?"

श्वेतांक ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया—"स्वामी, स्वास्थ्य तो ठीक है, पर मानसिक स्थिति अच्छी नहीं है।"

"क्या बात है।"

श्वेतांक थोड़ी देर तक मौन रहा—उसके बाद उसने अपना सिर उठाया—"स्वामी! आपकी मुझ पर इतनी कृपा रही है—आप ही मेरा कल्याण कर सकते हैं।"

बीजगुप्त हंसने लगा—"तुम जानते ही हो श्वेतांक, तुम मेरे भाई के समान हो। जो कुछ मेरे वश में है, मैं तुम्हारे लिए वह करने को तैयार हूं!"

"मैं जानता हूं और इसीलिए स्वामी से प्रार्थना करने का साहस हो रहा है। स्वामी! मैं सामंत मृत्युंजय की कन्या यशोधरा का पाणि-ग्रहण करना चाहता हूं।"

बीजगुप्त चौंक उठा—उसे ऐसा लगा, मानो हजारों बिच्छुओं ने एक साथ ही उसके शरीर में हजार डंक चुभा दिए हों। कुछ क्षणों के लिए वह विमूढ़-सा श्वेतांक की ओर देखता ही रह गया—"क्या कहा? यशोधरा का तुम पाणि-ग्रहण करना चाहते हो? उसमें मेरी सहायता की क्या आवश्यकता?"

"स्वामी, यह प्रस्ताव आर्य मृत्युंजय के सामने रखें!"

"तुम जानते हो श्वेतांक कि मृत्युंजय ने उसके पाणि-ग्रहण का प्रस्ताव मुझसे किया था—और मैंने उस समय चित्रलेखा के कारण उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। तुम यह भी जानते हो कि चित्रलेखा मेरे जीवन से निकल गई है, और मैं यशोधरा की ओर यथेष्ट आकर्षित हूं।"

"जानता हूं स्वामी! पर यह नहीं जानता हूं कि स्वामी के हृदय में यशोधरा के पाणि-ग्रहण की बात उठ सकती है।"

"नहीं—जो कुछ तुम कह रहे हो वह संभव नहीं हैं। मैं यशोधरा से प्रेम करने लग गया हूं—आज रात को ही मैंने यशोधरा से विवाह करने का

निश्चय कर लिया है।"—बीजगुप्त उद्विग्न हो गया, उसका स्वर एक तीव्र गांभीर्य से भर गया—"तुम मुझसे क्या करने को कह रहे हो श्वेतांक! क्या इतनी वेदना, इतना दुःख और इतनी हलचल मेरे लिए काफी नहीं है? क्या तुम चाहते हो कि मैं अपना जीवन नष्ट कर दूं? नहीं श्वेतांक! यह असंभव है। मैं यशोधरा से विवाह करूंगा—इतना समझ लो।"

श्वेतांक की आंखों में आंसू भर आए। उसने बीजगुप्त के सामने हाथ जोड़ दिए—"स्वामी! मुझे क्षमा करो! मैं अपराधी हूं, मुझे क्षमा करो! मैं अपने अधिकार से बाहर चला गया, मुझे क्षमा करो! स्वामी, तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल है—तुम आदर्श हो, मुझे क्षमा करो!"

बीजगुप्त चिल्ला उठा—"मुझे पागल मत बनाओ श्वेतांक! जाओ, यहां से चले जाओ, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, तुम चले जाओ!"

श्वेतांक धीमे-धीमे वहां से चला गया।

बीजगुप्त ने अपना हाथ अपने सिर पर मारा—"हाय रे भाग्य!"—इसके बाद वह स्वगत कह उठा—"नहीं! नहीं! श्वेतांक, यह नहीं हो सकता। विवाह करूंगा—मैं विवाह करूंगा। क्या मुझे सुख से रहने का अधिकार नहीं है?"

बीजगुप्त उठकर खड़ा हो गया—"मैं अभी जाऊंगा! मेरे निर्णय में बाधा डालनेवाला कोई नहीं है। मैंने निश्चय कर लिया है कि यशोधरा से विवाह करूंगा—अब उस निश्चय को बदलना असंभव है!"—बीजगुप्त ने रथ मंगवाया।

वह फिर सोचने लगा—"पर श्वेतांक! श्वेतांक को क्या अधिकार है कि वह यशोधरा से प्रेम करे? क्या वह नहीं जानता कि मैं यशोधरा की ओर आकृष्ट हूं।"—बीजगुप्त का सारा शरीर जल रहा था। उसका कंठ सूख गया था। उसने एक गिलास ठंडा जल पिया। उसकी उद्विग्नता कम हो गई, उसका मस्तिष्क कुछ शांत हुआ—"पर इसमें श्वेतांक का क्या अपराध! उसका प्रेम करना स्वाभाविक ही है। वह युवा है, उसके भी रक्त और मांस है, सब प्राकृतिक प्रेरणाएं हैं। और फिर वह क्या जाने कि मेरा चित्रलेखा के प्रति प्रेम मर गया!"

बीजगुप्त की विचारधारा ने पलटा खाया—मेरा चित्रलेखा के प्रति प्रेम मर गया? यह क्यों? मैं कितना निर्बल हूं कि एक स्त्री से प्रेम करके अब दूसरी स्त्री से प्रेम कर रहा हूं! क्या वास्तव में प्रेम अस्थायी है!

बीजगुप्त बड़े असमंजस में पड़ गया। वह यह मानने को तैयार न था कि प्रेम अस्थायी है—यद्यपि वह स्वयं इस बात को अनुभव कर रहा था—'नहीं, प्रेम अस्थायी नहीं है! फिर मैं यह सब क्यों करने जा रहा हूं? क्या चित्रलेखा से बदला लेने के लिए? नहीं!'—चित्रलेखा के विषय में उसके

हृदय में कोई बुरी भावना नहीं थी।

रथ द्वार पर आ गया था। बीजगुप्त यशोधरा के भवन की ओर चल दिया। फिर भी उसकी विचार-शृंखला टूटी नहीं—'क्या संयम के यही अर्थ हैं—क्या संसार में अपनापन ही सब कुछ है ? तो फिर मनुष्य में और पशु में भेद क्या है ? प्रत्येक प्राणी अपने लिए जीवित है—प्रत्येक व्यक्ति मानवभाव से प्रेरित होकर काम करता है। फिर मुझमें और संसार के अन्य प्राणियों में भेद कैसा ? यशोधरा से मेरे विवाह का क्या परिणाम होगा ? एक व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जायगा—और वह व्यक्ति मेरा प्रिय—भाई के समान श्वेतांक है। मैं स्वयं अपने सिद्धांतों से गिरूंगा। और क्या मैं यशोधरा से प्रेम भी कर सकूंगा ? अभी मैं उद्विग्न हूं, अभी अपने दु:ख को दूर करने के लिए मैं यशोधरा से विवाह किए लेता हूं ! पर भविष्य में ? नहीं ! मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं विवाह करूं। मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं श्वेतांक का जीवन दु:खमय बनाऊं; मैंने अपना पथ निर्धारित कर लिया था—सोच-समझकर। अब मुझे सफलता मिले अथवा असफलता—सुख मिले अथवा दु:ख, मुझे अपने मार्ग पर ही रहना चाहिए। दूसरों के सुख में बाधक होना—केवल अपने सुख की आशा पर, कायरता है; नहीं नीचता है। मैं अन्याय कर रहा हूं, दूसरों के साथ और स्वयं के साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दु:ख दोनों ही पड़े हैं—हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहसपूर्वक भोगें।'

रथ उस समय तक मृत्युंजय के द्वार पर पहुंच चुका था। बीजगुप्त ने मृत्युंजय को सूचना करवायी। मृत्युंजय बाहर आए। कुशल-क्षेम के बाद मृत्युंजय ने पूछा—"आर्य बीजगुप्त ने किस कारण मेरे घर को पवित्र करने का कष्ट उठाया ?"

बीजगुप्त ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"आर्य मृत्युंजय ! मैं आपके सामने आपकी कन्या के विवाह का प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ हूं !"

मृत्युंजय के मुख पर एक मुसकराहट दौड़ गई—"आर्य बीजगुप्त, आप कहिए !"

बीजगुप्त मृत्युंजय की मुसकराहट का अर्थ समझ गया—वह भी मुसकराया— "आर्य मृत्युंजय, मैं अपने संबंध में कुछ नहीं कहना चाहता। मैं अपने संबंध में पहले ही कह चुका हूं। मैं यह प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ हूं कि आप अपनी कन्या का विवाह श्वेतांक से कर दें। श्वेतांक कुलीन है, सुंदर है और सभ्य तथा शिक्षित है—वह वास्तव में आपकी कन्या के लिए योग्य वर होगा—शायद मुझसे भी योग्य।"

इस प्रस्ताव पर मृत्युंजय को आश्चर्य हुआ। मृत्युंजय का अनुमान था कि बीजगुप्त स्वयं अपने विवाह का प्रस्ताव करेंगे—श्वेतांक के विषय में

प्रस्ताव पर वे अवाक्-से रह गए। कुछ देर तक मौन रहकर उन्होंने कहा—''आर्य बीजगुप्त! श्वेतांक योग्य है; पर श्वेतांक सम्पन्न पिता का पुत्र नहीं है। वह निर्धन है। ऐसी अवस्था में मैं श्वेतांक के संबंध में प्रस्ताव पर विचार तक करने में असमर्थ हूं।''

इस बार बीजगुप्त को आश्चर्य हुआ—''पर आर्य मृत्युंजय! आप तो अतुल धनराशि के स्वामी हैं, और आपके यशोधरा के सिवा कोई संतति भी नहीं है।''

मृत्युंजय हंस पड़े—''आर्य बीजगुप्त! मेरी संपत्ति पर मेरी कन्या का कोई अधिकार नहीं, उसका अधिकारी मेरा दत्तक पुत्र होगा। आर्य बीजगुप्त आप स्वयं क्यों नहीं विवाह करते?''

''नहीं, मैं विवाह न करूंगा आर्य मृत्युंजय! क्या श्वेतांक से यशोधरा का विवाह एकदम असंभव है!''

मृत्युंजय ने धीरे से कहा—''हां, आर्य बीजगुप्त! श्वेतांक को योग्य तथा कुलीन वर समझते हुए मैं यशोधरा का उसके साथ उस समय तक विवाह नहीं कर सकता, जब तक वह निर्धन है!''

बीजगुप्त थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा—इसके बाद उसने कहा—''आर्य मृत्युंजय! मैं श्वेतांक को अपना दत्तक पुत्र बना रहा हूं। इस प्रकार वह मेरी संपत्ति का अधिकारी होगा। ऐसी स्थिति में तो आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिए।''

''नहीं आर्य बीजगुप्त, यह असंभव है। तुम्हारी अभी अवस्था ही क्या है! तुम बहुत संभव है कि निकट भविष्य में विवाह कर लो—फिर तुम्हारा पुत्र ही तुम्हारा उत्तराधिकारी होगा!''

''आप ठीक कहते हैं आर्य मृत्युंजय! यद्यपि मैं इस समय विवाह न करने पर तुला हुआ हूं, फिर भी मनुष्य की मति का क्या ठिकाना! पर मैं चाहता हूं कि श्वेतांक का और यशोधरा का विवाह हो जाय। इस विवाह से दोनों सुखी होंगे। इसके लिए मैं बड़ा से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत हूं। आर्य मृत्युंजय, मैं अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को दान दूंगा।''

मृत्युंजय आसमान से नीचे गिरे—''तुम नहीं जानते आर्य बीजगुप्त, तुम क्या कह रहे हो, तुम्हारा चित्त स्वस्थ नहीं है!''

''आप मेरी कुछ चिंता न करें—मैंने आपके सामने कह दिया है कि मैं अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को दान कर दूंगा। आप इसके साक्षी हैं। रही सामंत पदवी की बात—इसमें राज्याज्ञा की आवश्यकता होगी, उसका भी मैं सम्राट् से आज मिलकर प्रबंध कर लूंगा। अब आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिए!''

मृत्युंजय ने बीजगुप्त की ओर आंखें फाड़कर देखा—''मैं एक बार फिर

तुम्हें अवसर देता हूं—अपना प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद फिर तुम पीछे न हट सकोगे!"

बीजगुप्त ने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा—"आर्य मृत्युंजय! मैं जो कुछ कह चुका हूं, करूंगा। मैं मनुष्य हूं—बात से फिरना मैं नहीं जानता।"

"तो फिर तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकृत है।"—मृत्युंजय ने कांपते हुए स्वर में कहा।

बीजगुप्त उठ खड़े हुए—"मैं जाता हूं, दान-पत्र तथा पदवी के लिए राज्याज्ञा का प्रबंध आज ही हो जायगा—विलंब की कोई आवश्यकता नहीं। विवाह की तिथि आप नियत कर लें!"

मृत्युंजय ने उठते हुए कहा — "आर्य बीजगुप्त! मैंने संसार को देखा। मैं कहता हूं, आप मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं!"—मृत्युंजय के नेत्रों में आंसू छलक रहे थे।

बीजगुप्त अपने भवन पहुंचा। वह श्वेतांक के भवन में पहुंचा, श्वेतांक सो रहा था। उसकी चादर भीगी हुई थी। उसके नेत्रों से अश्रु अभी सूखे न थे। बीजगुप्त ने श्वेतांक को उठाया, श्वेतांक उठ पड़ा—"स्वामी, क्या आज्ञा है!"

"तुम मुझे अब स्वामी न कहना, सामंत श्वेतांक!"

विस्फारित नेत्रों से देखते हुए श्वेतांक ने कहा — "यह आप क्या कह रहे हैं!"

"मैं जो कुछ कह रहा हूं वह ठीक है। सुनो! मैंने तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव आर्य मृत्युंजय से किया था—उन्होंने कुछ आपत्ति की। उस आपत्ति को दूर करने के लिए मैंने अपनी संपत्ति तथा पदवी का दान उनके सामने तुम्हें कर दिया। अब उनको यशोधरा का तुम्हारे साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है!"

श्वेतांक थोड़ी देर तक निश्चल तथा विमूढ़-सा खड़ा हुआ बीजगुप्त की ओर देखता रहा — इसके बाद वह रो पड़ा—"नहीं! नहीं! स्वामी, मुझे यह स्वीकार नहीं। मैं कितना पापी हूं—स्वामी, मुझे क्षमा करो—मैं जाता हूं, मुझे क्षमा करो; मैंने आपके जीवन को नष्ट किया है—आप मुझ नराधम पर यह दया क्यों कर रहे हैं—मुझे स्वीकार नहीं है।"—वह बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ा।

बीजगुप्त ने श्वेतांक को उठाया—"श्वेतांक! जो कुछ होना था, वह हो चुका। अब यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति कुछ भी स्नेह है, तो जो कुछ मैं कर रहा हूं, स्वीकार करो। संसार के सामने मुझे झूठा न बनने दो। मैंने इस वैभव को काफी भोगा है—अब चित्त फिर गया है। इस वैभव को तुम

भोगो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं, तुम अस्वीकार न करो। चलो, दान-पत्र तथा पदवी के लिए राज्याज्ञा का प्रबंध करना है!"

बाईसवां परिच्छेद

चित्रलेखा लौट आई, पर वह बीजगुप्त से न मिली! बीजगुप्त से मिलने का उसको साहस न था। वह बीजगुप्त के प्रति अपराधिनी थी– उसने यह अनुभव किया; वह सीधे अपने स्थान को गई।

चित्रलेखा ने अपने ऐश्वर्य-सदन में ही साधना का जीवन व्यतीत करना आरंभ किया। इस जीवन में उसने शांति का अनुभव किया–वह पश्चात्ताप की अग्नि में सहर्ष जलने को तैयार थी। उसे अपने से ही घृणा हो गई। उसका कार्यक्रम दिन-रात का रोना था।

वह बीजगुप्त से प्रेम करती थी – बीजगुप्त के प्रति उसके हृदय में कितना गहरा प्रेम था, उसने उतने दिनों के वियोग के बाद अनुभव किया। पर अब वह भ्रष्ट हो चुकी थी, कुमारगिरि के पागलपन और मूर्खता के एक छोटे-से क्षण में आत्म-समर्पण करके। वह बीजगुप्त से इतना प्रेम करती थी कि वह बीजगुप्त को धोखा न देना चाहती थी। उसने अपराध किया था–उस अपराध के फलस्वरूप उसे निराशापूर्ण वेदना की असह्य ज्वाला में जलना ही इष्ट था। जितना अधिक वह जलती थी, उतना ही अधिक उसको सुख मिलता था–जितना अधिक वह रोती थी, उतनी ही उसे शांति मिलती थी।

इस प्रकार चित्रलेखा को एक मास हो गया। एक दिन वह बैठी हुई रो रही थी कि दासी ने उसको सूचना दी–"आर्य श्वेतांक आपसे मिलना चाहते हैं?"

वह चौंककर उठ खड़ी हुई। क्या बीजगुप्त ने उसे बुलवाया है?–"कहां हैं? मैं चलती हूं!"

श्वेतांक अतिथि-भवन में बैठा हुआ चित्रलेखा की प्रतीक्षा कर रहा था। चित्रलेखा को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह पीली पड़ गई थी–उसका सौंदर्य विकृत हो गया था। वह पहचानी तक नहीं जाती थी–"देवि! तुम्हारी यह क्या हालत है?"

"अच्छी तो हूं"– इतना कहकर चित्रलेखा बैठ गई।

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। चित्रलेखा ने पूछा–"आर्य बीजगुप्त तो कुशलपूर्वक हैं?"

श्वेतांक के मुख पर दुख की एक हल्की-सी रेखा दौड़ गई–"हां! आर्य बीजगुप्त अच्छी तरह से हैं। पर उनमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया।"

"परिवर्तन हो गया।"– चित्रलेखा का कौतूहल बढ़ गया–"कैसा परिवर्तन? क्या उन्होंने विवाह कर लिया है?"

एक रूखी मुसकराहट के साथ श्वेतांक ने कहा–"नहीं, उन्होंने विवाह नहीं किया है, विवाह तो मैं करने जा रहा हूं। सामंत मृत्युंजय की कन्या यशोधरा से मेरा विवाह होनेवाला है, उसी में निमंत्रित करने के लिए मैं आया हूं; पर आर्य बीजगुप्त ने एक बड़ा त्याग किया है–वे देवता हैं। सामंत मृत्युंजय मुझसे अपनी कन्या का विवाह नहीं करना चाहते थे, क्योंकि मैं निर्धन था। आर्य बीजगुप्त ने अपनी पदवी तथा सारी संपत्ति मुझे दान कर दी है। वे पाटलिपुत्र छोड़कर बाहर जानेवाले हैं – केवल मेरे विवाह के लिए ही वे रुके हैं।"

चित्रलेखा का हृदय धड़कने लगा, उसकी आंखों में आंसू भर आए – "क्या बीजगुप्त ने इतना कर डाला? श्वेतांक ! जानते हो यह एक बड़ा त्याग है। और इस सबकी जड़ मैं हूं। फिर भी आर्य श्वेतांक, तुम्हें बधाई है। तुम्हारा विवाह कब होगा?"

"अगले सप्ताह रविवार के दिन विवाह-कार्य संपन्न होगा। चंद्रवार को प्रीतिभोज है–उसमें सम्राट् तथा राज्य के कर्मचारी और सामंत आवेंगे। देवि! प्रीतिभोज में तुम्हारी उपस्थिति आवश्यक है।"

चित्रलेखा ने कहा–"श्वेतांक! मुझे क्षमा करो। मैं किसी दूसरे दिन आऊंगी, पर प्रीतिभोज में न आ सकूंगी। मैंने एक दूसरा ही जीवन अपना लिया है–उस उत्सव में मेरा जाना उचित नहीं है।"

"देवि चित्रलेखा! तुम मुझे भाई कह चुकी हो–यह मेरा अनुरोध है!"

"मैं असमर्थ हूं–श्वेतांक! तुम जानते हो कि मेरा निश्चय अमिट होता है। मेरी तुम पर बहन की ममता है, पर बड़ी बहन की ममता है। मैं दूसरे दिन आऊंगी।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा! पर एक बात बतला देना उचित होगा। चंद्रवार की रात को ही आर्य बीजगुप्त देश-पर्यटन को प्रस्थान करेंगे, फिर सोच-समझ लो।"

"आर्य बीजगुप्त उसी रात को प्रस्थान करेंगे!"–चित्रलेखा कुछ हिचकिचाई; पर एक ही क्षण में उसने दृढ़तापूर्वक कहा–"पर इससे मुझको क्या? मेरा निश्चय अमिट है।"

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ – "जैसी इच्छा देवि!"

श्वेतांक का विवाह हो गया–प्रीतिभोज में सम्राट् के साथ अन्य अतिथि

आए। उस दिन बीजगुप्त सबका स्वागत कर रहा था। वह सबसे हंसकर बातें करता था, पर उसका हृदय जल रहा था। चित्रलेखा की अनुपस्थिति उसे बुरी लगी। अंतिम बार पाटलिपुत्र छोड़ने के पहले वह चित्रलेखा को देखना चाहता था; पर चित्रलेखा न आई।

भोजन के बाद सम्राट् ने श्वेतांक को बधाई दी और उसको सामंत के नाम से संबोधित किया। इसके बाद उसकी दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी। बीजगुप्त को बुलाकर सम्राट् ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद वे खड़े हो गए। सम्राट् के साथ अन्य अतिथि भी खड़े हो गए। भवन में सन्नाटा छा गया। सम्राट् ने आरंभ किया—"बीजगुप्त! तुम एक महान् आत्मा हो। तुमने असंभव को संभव कर दिखाया। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम देवता हो। आज भारतवर्ष का सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य तुम्हारे सामने मस्तक नमाता है।"—इतना कहकर सम्राट् चंद्रगुप्त ने बीजगुप्त के सामने सिर झुका दिया। जितने अतिथि वहां पर खड़े थे, सबके सिर एक साथ ही झुक गए—स्त्रियों के बीच से हिचकियों के साथ एक दबा रुदन फूट पड़ा।

बीजगुप्त ने सम्राट् के सामने झुककर कहा—"महाराज! मैं इस आदर के सर्वथा अयोग्य हूं—आज मैं देश-पर्यटन के लिए जा रहा हूं, एक भिखारी की भांति—आप मुझे अपना आशीर्वाद दें और विदा दें!"

इतना कहकर बीजगुप्त द्वार की ओर बढ़ा। अतिथि दोनों ओर एक पंक्ति बनाकर खड़े थे—उनके बीच से बीजगुप्त चला। बीजगुप्त के मुख पर एक दैवी मुसकराहट थी। अतिथियों ने उसमें एक तेज देखा। वृद्ध से लेकर बालक तक हाथ जोड़कर खड़े हो गए थे। बीजगुप्त वैभव तथा शक्ति के उस जमघट में से शांति और त्याग की गुरुता के साथ निकल गया।

बाहर बीजगुप्त के सेवक खड़े थे। बीजगुप्त को देखते ही वे रोने लगे—बीजगुप्त एक क्षण के लिए रुका। उसने प्रत्येक व्यक्ति को देखा; इसके बाद उसने कहा—"तुम श्वेतांक को मेरे ही समान समझना—और तुम मुझे भूलने का प्रयत्न करना।"

सेवक और जोर से रोने लगे। कुछ लोगों ने एक साथ ही कहा—"हम आपके साथ चलेंगे!"

बीजगुप्त ने गंभीर स्वर में कहा—"क्या कहा? मेरी आज्ञा है कि तुम यहां पर रहो। कोई भी व्यक्ति यहां से न चले।"

लोग सहम कर पीछे हट गए—बीजगुप्त चल दिया। अर्धरात्रि बीत चुकी थी। नगर में सर्वथा शांति छाई हुई थी। बीजगुप्त धीमी चाल से बढ़ता ही गया। एक भिखारी की भांति वह पैदल जा रहा था। उसके शरीर पर साधारण व्यक्ति के-से वस्त्र थे और उसके पास संबल-रूप चांदी की कुछ

मुद्राएं थीं। बीजगुप्त को पैरों की आहट सुनाई दी–धीरे-धीरे वह आहट बढ़ती ही जाती थी। बीजगुप्त ने पीछे फिरकर देखा–अंधकार में उसे कुछ दिखलाई न दिया, वह और आगे बढ़ा।

पद-ध्वनि बढ़ती ही गई। उस अंधकार से बीजगुप्त की दृष्टि में एक कपड़े से ढंकी हुई मूर्ति ने प्रवेश किया–"मेरे देवता!"

बीजगुप्त के पैर रुक गए–उसने पूछा–"तुम कौन?"

"मेरे देवता! मेरे देवता! मुझे क्षमा करो"– इतना कहकर वह मूर्ति बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ी।

बीजगुप्त ने कर्कश स्वर में कहा–"चित्रलेखा? मेरे जीवन की अभिशाप–तुम यहां क्यों आईं–जाओ! जाओ!"– वह पीछे हट गया, "अब सब समाप्त हो चुका–तुम क्यों आयी हो?"

"अपने देवता की चरण-रज लेने! अपने देवता की पूजा करने के लिए।" चित्रलेखा खड़ी हो गई–"नाथ! मैंने तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया; मैंने तुम्हें मिटा दिया; तुम मुझे शाप दो, दंड दो, मुझे ताड़ित करो–पर मुझसे घृणा न करो।"

बीजगुप्त का सारा शरीर कांप उठा, उसने रुंधे हुए कंठ से कहा–"चित्रलेखा, सब समाप्त हो चुका! तुम्हीं ने सब समाप्त कर दिया–तुम कुमारगिरि की कुटी छोड़कर मेरे पास न आईं–मैं निराश हो गया। अब इस समय मुझे विचलित करने क्यों आई हो–मेरे पास अब कुछ नहीं है, न हृदय में उमंग है; न पास में वैभव! जाने दो!"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त का हाथ पकड़ लिया–"नहीं, मैं तुम्हें अभी न जाने दूंगी मेरे स्वामी! एक दिन तुम्हें मेरा अतिथि बनकर रहना होगा, यदि जाना ही है, तो कल चले जाना!"

बीजगुप्त ने अपना हाथ छुड़ा लिया–"मेरे सामने से हटो–नर्तकी! मेरे सामने से हटो। अब तुम मुझे नहीं रोक सकतीं। अपने विनाशकारी कृत्य के परिणाम को तुम देखो और हंसो– जाओ, मुझे जाने दो!"–बीजगुप्त आगे बढ़ा।

चित्रलेखा ने बीजगुप्त के पैर पकड़ लिए–"मैं कहती हूं कि मैं तुम्हें न जाने दूंगी – तुम्हें मेरे साथ मेरे भवन तक चलना होगा। बीजगुप्त–मेरे नाथ–क्या तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति प्रेम मर गया है? बोलो नाथ क्या…" – चित्रलेखा की हिचकियां बंध गईं–वह सिसक-सिसक कर रो रही थी।

बीजगुप्त अपने को सम्हाल न सका, उसने कहा–"हाय रे! यदि प्रेम ही मर जाता, तो मैं यह वैभव काहे को छोड़ता? चित्रलेखा, मैं चाहता हूं कि मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति प्रेम मर जाता; पर यह न हो सका–यह न हो सकेगा!"– इतना कहकर बीजगुप्त ने चित्रलेखा को उठाकर आलिंगन

करना चाहा, पर चित्रलेखा हट गई—नहीं मेरे देवता! मेरे शरीर को आप स्पर्श न करें। मैं अपवित्र हूं, पतिता हूं, पापिनी हूं मेरे देवता! चलिए, आप मेरे भवन को चलिए, मुझे आप पवित्र कीजिए— अपने शाप की अग्नि में तपाकर आप मुझे पवित्र कीजिए।"

"चलो!" – बीजगुप्त कह उठा – "चलो चित्रलेखा, संसार में एक तुम्हारी ही बात मैं नहीं टाल सकता। मुझे जितना गिराना चाहो गिराओ; पर यह वचन दे दो कि तुम मुझे कल न रोकोगी।"

"मैं वचन देती हूं।"

चित्रलेखा अपने भवन पर पहुंची। उसने बीजगुप्त के शयन का प्रबंध करा दिया; इसके बाद उसने कहा—"नाथ! तुम शयन करो, कल प्रातःकाल बातें करूंगी।" – इतना कहकर वह चली गई। बीजगुप्त अवाक्-सा उसे देखता ही रह गया।

प्रातःकाल चित्रलेखा बीजगुप्त के पास आई—"स्वामी! मुझे आप अपना चरणामृत दीजिए!"

बीजगुप्त को चित्रलेखा के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ – "यह क्यों?"

"मैं अपने को पवित्र कर रही हूं! मेरे स्वामी, मैं अपने मार्ग से विरत हो चुकी हूं, मैं योगी कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी हूं, मैंने अपने शरीर को क्रोध में आकर उसको सौंप दिया है, मैं उस शरीर को पवित्र करना चाहती हूं।"—चित्रलेखा ने अपनी सारी कथा बीजगुप्त को सुना दी।—"अब आप समझ सकते हैं स्वामी, कि मैं आपके पास क्यों नहीं आई। आप मुझे क्षमा करें!"

"केवल इतनी-सी बात थी?" – बीजगुप्त हंस पड़ा—"चित्रलेखा! तुमने बहुत बड़ी भूल की। तुमने मुझे समझने में भ्रम किया। तुम मुझसे क्षमा मांगती हो? चित्रलेखा! प्रेम स्वयं एक त्याग है, विस्मृति है, तन्मयता है। प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध ही नहीं होता, फिर क्षमा कैसी! फिर भी यदि तुम कहलाना ही चाहती हो तो मैं कहे देता हूं—मैं तुम्हे क्षमा करता हूं!"

चित्रलेखा बीजगुप्त का चरण पकड़कर बोली – "नाथ! तो फिर तुम मुझे स्वीकार करो!!"

"यह किस प्रकार संभव है? देवि चित्रलेखा! मैं भिखारी हूं, मैं वैभव त्याग चुका हूं—अब यह किस प्रकार संभव है?"

"नाथ! मेरे पास अतुल धनराशि है, मैं तुम्हारी हूं। मेरा धन तुम्हारा है, फिर तुम निर्धन कैसे? फिर तुम अपने को भिखारी क्यों कहते हो?"

"तुम्हारी संपत्ति—तुम्हारी धनराशि? यह मेरे काम की नहीं है। मैंने

वैभव छोड़ा है, उसे अपनाने के लिए नहीं, उसे सदा के लिए छोड़ने के लिए। मैं तुम्हें भी एक भिखारिणी के रूप में स्वीकार कर सकता हूं!"

चित्रलेख उठ खड़ी हुई—"तो फिर ऐसा ही हो—संसार में हम दोनों भिखारी बनकर निकल पड़ें। प्रेम और केवल प्रेम हमारा आधार हो! मेरे देवता! मैं अपनी संपत्ति आज ही दान किए देती हूं—रात में हम दोनों ही अथाह संसार में प्रेम की नौका पर बैठकर निकल चलें।" – चित्रलेखा का मुख-मंडल चमक उठा। उसके नयनों में एक प्रकार की ज्योति आ गई—उसकी आत्मा प्रकाशमान हो उठी।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा का चुंबन ले लिया—"हम दोनों कितने सुखी हैं!"

उपसंहार

एक वर्ष बाद!

महाप्रभु रत्नांबर ने कहा—"वत्स श्वेतांक! तुम्हारा विवाह हो गया और तुम गृहस्थ हो चुके। अब मुझे बतला सकते हो कि बीजगुप्त और कुमारगिरि—इन दोनों में कौन व्यक्ति पापी है?"

श्वेतांक ने रत्नांबर के सामने मस्तक नमा दिया—"महाप्रभु! बीजगुप्त देवता हैं। संसार में वे त्याग की प्रतिमूर्ति हैं। उनका हृदय विशाल है। और कुमारगिरि पशु है। वह अपने लिए जीवित है, संसार में उसका जीवन व्यर्थ है। वह जीवन के नियमों के प्रतिकूल चल रहा है। अपने सुख के लिए उसने संसार की बाधाओं से मुख मोड़ लिया। कुमारगिरि पापी है!"

—"और वत्स विशालदेव! तुमने योग की दीक्षा ले ली, और तुम योगी हो गए। अब तुम मुझे बतलाओ कि कुमारगिरि और बीजगुप्त—इन दो में कौन व्यक्ति पापी है?"

विशालदेव ने रत्नांबर के सामने मस्तक नमा दिया—"महाप्रभु! योगी कुमारगिरि अजित हैं। उन्होंने ममत्व को वशीभूत कर लिया है। वे संसार से बहुत ऊपर उठ चुके हैं। उनकी साधना, उनका ज्ञान और उनकी शक्ति पूर्ण है। और बीजगुप्त वासना का दास है। —उसका जीवन संसार के घृणित भोग-विलास में है। वह पापी है—पापमय संसार का वह एक मुख्य भाग है!"

रत्नांबर कह उठे—"तुम दोनों विभिन्न परिस्थितियों में रहे और तुम दोनों की पाप की धारणाएं भिन्न-भिन्न हो गई हैं। तुम लोग जा रहे हो—तुम्हारी विद्या पूर्ण हो चुकी है, अब अपना अंतिम पाठ मुझसे सुने

जाओ—

''संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है—प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनःप्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है – विवश है। कर्त्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा?

''मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। केवल व्यक्तियों के सुख के केंद्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को व्यभिचार में देखते हैं, कुछ त्याग में देखते हैं—पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है; कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह काम न करेगा, जिसमें दुःख मिले—यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है।

''संसार में इसीलिए पाप की परिभाषा नहीं हो सकी—और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं, जो हमें करना पड़ता है।''

रत्नांबर उठ खड़े हुए—''यह मेरा मत है—तुम लोग इससे सहमत हो या न हो, मैं तुम्हें बाध्य नहीं करता और न कर सकता हूं। जाओ और सुखी रहो! यह मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।''

राजकमल से प्रकाशित
भगवतीचरण वर्मा की कृतियाँ

उपन्यास

भूले बिसरे चित्र (सा अ पुरस्कार)
सीधी-सच्ची बातें
प्रश्न और मरीचिका
सबहि नचावत राम गोसाईं
सामर्थ्य और सीमा
रेखा
वह फिर नहीं आई
युवराज चूंडा
धुप्पल
चाणक्य
चित्रलेखा

कहानी-संग्रह

प्रतिनिधि कहानियाँ
मेरी कहानियाँ
मोर्चाबन्दी

नाटक

मेरे नाटक
रुपया तुम्हें खा गया
वसीयत

कविता

मेरी कविताएँ
सविनय और एक नाराज कविता

आलोचना

साहित्य के सिद्धांत तथा रूप

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा